ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

यज्ञ कर्म सर्वश्रेष्ठ ईश्वर पूजा
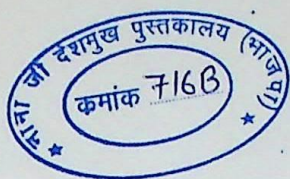
–स्वामी राम स्वरुप जी
योगाचार्य

ओ३म्

यज्ञ कर्म सर्वश्रेष्ठ ईश्वर पूजा

स्वामी राम स्वरुप जी (योगाचार्य)
संस्थापक
वेद मंदिर, टीका लेहसर, योल बाजार
योल कैंप, जिला कांगड़ा (हि० प्र०)

प्रकाशकः

वेद मंदिर प्रकाशन

टीका लेहसर योल बाजार,

योल कैम्प, जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)

स्वामी राम स्वरुप जी, योगाचार्य

संस्थापक अध्यक्ष

वेद एवं योग मन्दिर, (रजि०)

161–B, विक्रान्त एन्कलेव,

मायापुरी, नई दिल्ली–110064

एवम्

वेद मंदिर

टीका लेहसर, योल कैम्प,

जिला कांगड़ा, हि० प्र०

दूरभाष : 01892–236107

Web site:- www.vedmandir.com

Yajya Karm S.I.P.
ISBN 93-80698-03-8
9 789380 698038
Rs. 65.00

द्वितीय संस्करण

(1000 पुस्तकें)

अगस्त 2004

मूल्य : ~~250~~/– रुपये
65

योगाचार्य स्वामी राम स्वरुप जी

श्रद्धांजलि

श्री सतपाल गुप्ता

श्रीमती आशा रानी

प्रस्तुत पुस्तक का सम्पादन स्वर्गीय श्री सतपाल गुप्ता एवं उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीय श्रीमती आशारानी जी की याद में उनके पुत्र एवं पुत्रियों द्वारा किया गया है। सद्भावना, त्याग, परोपकार एवं दया का भाव रखना इस दम्पत्ति के चरित्र की प्रमुख विशेषता रही है।

इस पुस्तक की रचना परम पूज्य गुरु स्वामी राम स्वरूप जी ने की है। स्वामी जी वेदों के महान ज्ञाता हैं। यह वेद उन्होंने, पढ़े, सुने या याद नहीं किए हैं, अपितु तपस्या के दौरान समाधि अवस्था में यह स्वयं ही उनके हृदय में प्रकट हुए हैं। प्रस्तुत पुस्तक में स्वामी जी ने कुछ महत्त्वपूर्ण वैदिक मन्त्रों की अर्थ सहित व्याख्या करके साधारण जनता को लाभान्वित करने की अनुकम्पा की है।

गुरु महाराज जी द्वारा किए गए इस महत्त्वपूर्ण प्रयत्न के लिए हमारा गुप्ता परिवार सदैव ऋणी रहेगा। शब्दों द्वारा अपनी हार्दिक अनुभूतियों को प्रकट करना असंभव है।

पुत्र एवं पुत्र वधु
श्री परशोत्तम कुमार एवं
श्रीमती डिम्पल गुप्ता

दामाद एवं पुत्रियाँ
श्री राकेश गुप्ता एवं श्रीमती अँजना गुप्ता
श्री राजकुमार गुप्ता एवं श्रीमती वीना गुप्ता
श्री राकेश गुप्ता एवं श्रीमती शीतल गुप्ता

अनुक्रमणिका

दो शब्द

ऋग्वेद मंत्र 1/164/39 में कहा कि यदि हम ईश्वर के स्वरूप, स्वाभाविक गुण, कर्म आदि के विषय में नहीं जानते तो हवन अथवा वेद के मंत्र हमारा कोई भला नहीं करेंगे। अतः क्षिप्त, विक्षिप्त एवं मूढ़ वृत्ति जिसमें आधिकाधिक प्रकृति के रज, तम एवं सत्व गुणों से उत्पन्न विकार हैं उनसे ऊपर उठकर जब तक हम एकाग्र वृत्ति में यज्ञ नहीं करते और यज्ञ में वेद-व्याख्यान नहीं सुनते तब तक जीव का कल्याण होना असंभव है। महाभारत के शांति पर्व में भीष्म युधिष्ठिर महाराज को यही सत्य समझा रहे हैं कि हे, युधिष्ठिर, जो वेदों को विद्वान से सुनकर प्रथम शब्द-ब्रह्म में प्रवीण होता है, वही व्यक्ति वेदों के उपदेश को आचरण में लाकर परब्रह्म को पाता है । अथर्ववेद मंत्र 12/5(1)/3 में कहा है कि वेद विद्या का प्रसार केवल यज्ञ के माध्यम से होता है, अतः हम यास्क मुनि के इस वाक्य को भी भली प्रकार समझें कि **"यज्ञौ वै श्रेष्ठतमम् कर्मः"** अर्थात् यज्ञ कर्म ही पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ शुभ कर्म है जिसमें विद्वान वेद मंत्रों की व्याख्या द्वारा तिनके से लगाकर ब्रह्म तक का ज्ञान भी देता है।

बहुत दिनों से यज्ञ के ऊपर कुछ लिखने की प्रेरणा हृदय में उत्पन्न हो रही थी, जो स्वल्प समय में इस पुस्तक में उद्धृत की जा रही है । पुस्तक लिखने का प्रयोजन यही है कि हम मंत्रों के शब्द, अर्थ एवं भावार्थ को बुद्धि द्वारा ग्रहण करें और प्रथम शब्द-ब्रह्म में प्रवीण हो जाएँ । तब विद्या अवश्य आचरण में आएगी, यज्ञ चलते रहेंगे एवं कभी न कभी हमारे हृदय में वह सर्वशक्तिमान, जगत रचयिता, सच्चिदानंद स्वरुप परमेश्वर अवश्य प्रकट होगा । अतः आशा है कि जिज्ञासु इस पुस्तक का अध्ययन, मनन करके केवल एक परमेश्वर को शब्दों द्वारा जानने का प्रयत्न करके यज्ञ एवं योगाभ्यास आदि द्वारा विकारों से छूटकर परम शांति प्राप्ति की ओर अग्रसर होंगे । ईश्वर कृपा रही तो अगली पुस्तक में स्वस्तिवाचनम् एवं शांतिकरणम् की व्याख्या करने का प्रयत्न करेंगे ।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन स्वर्गीय श्री सतपाल गुप्ता एवं उनकी

धर्मपत्नी स्वर्गीय श्रीमती आशारानी जी की याद में उनके पुत्र एवं पुत्रियों द्वारा किया गया है। सद्भावना, त्याग, परोपकार एवं दया का भाव रखना इस दम्पती के चरित्र की प्रमुख विशेषता रही है। दोनों ही हमारे श्रद्धालु शिष्य एवं सेवक रहे हैं। ईश्वर का नाम जपने वाले, नित्य हवन–यज्ञ करने वाले एवं यज्ञ के बड़े–बड़े आयोजनों में श्रद्धा सेवा सहित सम्मिलित होने वाले तथा दानवीर रहे हैं। निश्चित ही ऐसे वैदिक शुभ कर्म करने वाली यह दोनों जीवात्माएं परलोक में शांति को प्राप्त हुई हैं। मुझे खुशी है कि इनके पुत्र और पुत्रियाँ भी अपने माता–पिता के पद–चिन्हों पर चलते हुए यज्ञ, श्रद्धा, वेद विद्या पर आचरण, नित्य हवन, योगाभ्यास एवं दान आदि में बढ़–चढ़ कर अपने संपूर्ण परिवार सहित हिस्सा ले रहे हैं तथा देवपूजा, संगतिकरण एवं दान, जो यज्ञ का वास्तविक स्वरुप है, इसे जीवन में सार्थक कर रहे हैं। पुस्तक के प्रकाशन का सब व्यय स्वर्गीय श्री सतपाल एवं उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीय श्रीमती आशारानी जी के पुत्र, पुत्रियों एवं दामादों ने वहन किया है। श्रीमती– अञ्जना दीवान, बी.ए.बी.ऐड, पत्नी श्री राकेश दीवान, अपने पति वा बच्चों सहित इन्डोनेशिया में स्वयं के व्यवसाय के साथ बसे हुए हैं। डा. वीना गुप्ता, एम.ए (गोल्ड मैडलिस्ट), पी.एच..डी., पत्नी श्री राजकुमार, जम्मू कालेज में लैक्चरार हैं। इनके पति का जम्मू में अपना स्वयं का अच्छा व्यवसाय है। श्रीमती शीतल गुप्ता, एम.ए (इंगलिश) पत्नी, श्री राकेश गुप्ता, सरकारी स्कूल जम्मू में अध्यापिका हैं और इनके पति जो एम. एस.सी (कैमिस्ट्री) (गोल्ड मैडलिस्ट) हैं, जम्मू सरकार में फारेस्ट इन्सपैक्टर हैं।

स्वर्गीय सतपाल जी के पुत्र श्री पुरूषोत्तम गुप्ता, बी.कॉम हैं वा अपना जम्मू में व्यवसाय है और इनकी पत्नी, श्रीमती डिम्पल गुप्ता, बी. कॉम, एक सुशील, घरेलु नारी हैं। यह सब श्रद्धावान गृहस्थी, नित्य हवन करने वाले, ईश्वर भक्त, गुरु सेवक, वेद विद्या को सुनने वाले तथा दानवीर हैं। मेरा हार्दिक आशीर्वाद है कि यह सब परिवार सदा सुखी रहे ।

अंत में मैं साध्वी ऋतम्भरा (प्रतिभा), गीतांजलि, प्रज्ञा (प्रीति) एवं गार्गी को भी हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक एवं इंगलिश की पुस्तक (Questions and Answers on Vedanta and Eternal Vedas Philosophy) को लिखने में दिन रात अथक परिश्रम करके मेरा साथ

दिया। यह साध्वी अपने अध्यात्म मार्ग वेदाध्ययन, योगाभ्यास, भजन इत्यादि वैदिक शुभ कर्मों में उन्नति को प्राप्त हों।

धन्यवाद

स्वामी रामस्वरुप,
योगाचार्य
संस्थापक अध्यक्ष
वेद एवं योग मन्दिर (रजि.)
161.बी, विक्रान्त एन्कलेव
माया पुरी
नई दिल्ली–110064

स्वामी राम स्वरुप,
योगाचार्य
वेद मन्दिर टीका लेहसर,
योल बाजार, योल कैम्प
जि. कागड़ा (हि.प्र.)
पिन 176052

भूमिका

ऋग्वेद मंत्र 10/130/1 में कहा **(यः यज्ञः देवकर्मभिः एकशतम् आयतः)** कि ईश्वर ने आदि में सृष्टि यज्ञ अर्थात सृष्टि एवं न्यूनतम सौ वर्ष की आयु वाले एवं मुक्ति की कामना वाले मनुष्य के शरीर की रचना की। इसी सूक्त के मन्त्र 6 में कहा **(पुराणे जाते यज्ञे)** सनातन यज्ञ पूर्ण होने पर **(नः पितरः)** हमारे पूर्वज **(तेन)** उस यज्ञ के द्वारा **(ऋषयः– मनुष्याः)** अर्थात् मन्त्रदृष्टा ऋषि तथा साधारण मनुष्य **(तान्)** उस यज्ञ को **(मनसा–चक्षसा)** मन द्वारा और नेत्रों से देखकर **(पश्यत्–मन्ये)** देखते और जानते रहे हैं कि **(ये पूर्वे)** यह हमारे पूर्व के ऋषि एवं मनुष्य मिलकर **(इमं यज्ञम्)** इन यज्ञों का **(अजयन्त)** अनुष्ठान करते रहे हैं। और अगले मन्त्र में कहा कि वैदिक स्तुति मन्त्रों द्वारा ऋषि, इस प्रकार यज्ञ द्वारा ईश्वर की पूजा करके **(धीराः अन्वालेभिरे)** ध्यान द्वारा ब्रह्म में लीन होने की अवस्था को प्राप्त करते रहे हैं।

भावार्थः–

मन्त्रों का भाव है कि अनादिकाल से सृष्टि की रचना, पालना एवं संहार तथा पुनः रचना का क्रम ईश्वर की व्यवस्था में, ईश्वर की स्वाभाविक क्रिया के अन्तर्गत चला आ रहा है। इसमें ईश्वर ने मनुष्य को प्रत्येक वेद में **'यज्ञ'** शब्द का ज्ञान दिया है। ऋग्वेद के पहले मन्त्र में ईश्वर को **''यज्ञस्य देवम्''** अर्थात सृष्टि रचना, मुक्ति प्राप्ति के लिए मनुष्य के शरीर की रचना तथा देवपूजा, संगतिकरण एवं दानादि सर्वश्रेष्ठ कर्मों द्वारा माता–पिता, अतिथि एवं विद्वानों की सेवा–महिमा रुपी यज्ञ का देने वाला कहा है। सामवेद के पहले मन्त्र का भाव है कि हे ईश्वर! हमें यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों का ज्ञान देने के लिए, हमारे हृदय में विराजिये। इसी मन्त्र का विद्वान के प्रति भाव है कि हे ऋषिवर! आप यज्ञ, विद्या का ज्ञान देकर, यज्ञ का प्रसार करने के लिए एवं यज्ञ में आहुति दान कराने के लिए हमारे पास आएँ। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में भी ईश्वर से यही प्रार्थना की गई है कि हे–ईश्वर! हमारी इन्द्रियाँ **''श्रेष्ठतमाय कर्मणे प्रार्पयतु''** सर्वश्रेष्ठ

यज्ञ कर्म से जुड़ी रहें अर्थात् हम तेरे दिए हुए इस मानव शरीर द्वारा, संसार का सर्वश्रेष्ठ कर्म "यज्ञ" सम्पूर्ण आयु करते रहें । इन तीन वेदों में ज्ञान, कर्म एवं उपासना, यह तीन विद्याएँ ईश्वर ने समझाईं हैं और इन तीनों विद्याओं की सिद्धि–स्वीकृति, चौथा वेद अथर्ववेद करता है । अतः अथर्ववेद के पहले ही मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना है कि हे परमेश्वर! मैं सम्पूर्ण वेद विद्या के ज्ञाता, अपने आचार्य से चारों वेदों में कहे मन्त्रों के गहन रहस्य को सृष्टि रचना सहित प्राप्त करूँ। मन्त्र में "**वाचस्पति**" शब्द आचार्य–ऋषि के लिए प्रयोग हुआ है। "**वाचस्पति**" शब्द का अर्थ है सम्पूर्ण वेदों का ज्ञाता, आचार्य। अतः हम इन ईश्वर के वचनों को सदा ध्यान में रखें कि हमारा आचार्य सम्पूर्ण वेद विद्या का ज्ञाता होना आवश्यक है अन्यथा प्राणी अविद्या को विद्या, असत्य को सत्य, जड़ को चेतन तथा दुःख को ही सुख मानकर भक्ति करता हुआ भी सदा दुःखी रहेगा । इसलिए अथर्ववेद मन्त्र 5/17/8 में कहा कि वेद एवं योग विद्या का ज्ञाता अकेला, ब्रह्मऋषि, वेद विद्या की रक्षा करने में समर्थ है । अतः पूर्ण वेद विद्या के ज्ञाता को ही वेद ने पूर्ण गुरु कहा है । मनुस्मृति श्लोक 1/23 में कहा–

'अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ।।"

अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में अंगिरा, आदित्य, वायु और अग्नि, इन चार ऋषियों के हृदय में ईश्वर ने वेदों का ज्ञान उत्पन्न किया और इन ऋषियों ने चारों वेदों में कही "त्रयं ब्रह्म" अर्थात् ज्ञान, कर्म एवं उपासना, इन तीनों विद्याओं को यज्ञ की सिद्धि के लिए, दोहन करक **(मनन् करके)** संसार में प्रकट किया । अर्थात् ऊपर कहे अथर्ववेद मन्त्र 1/1/1 का यही भाव है कि हम पूर्ण आचार्य से वेदविद्या **(शब्द ब्रह्म)** को सुनकर यज्ञ की सिद्धि को प्राप्त होएँ । अर्थात् मन्त्र कह रहा है कि यज्ञ के वास्तविक रहस्य को जानकर उसे जीवन में उतारने के लिए, वर्तमान वेदज्ञ आचार्य का होना अति आवश्यक है । तभी हमारा ऋग, यजु एवं तीसरे सामवेद के ऊपर कहे मन्त्रों में वर्णन किया हुआ यज्ञ सिद्ध होगा । यजुर्वेद के पहले ही अध्याय के मन्त्र 6 में प्रश्न है कि ऐ मनुष्य ! तुझे कौन यज्ञ रुपी सत्य कर्म करने का उपदेश करता है? तो उत्तर में कहा कि ईश्वर हमें उपदेश करता है। सामवेद मन्त्र 1232 का भाव है कि हे ईश्वर! आप सर्वत्र हो परन्तु "**ब्रह्मवाहसः**"

वेदवाहक अर्थात् वेदाध्ययन एवं योगाभ्यास के पश्चात् जिनके हृदय में वेद ज्ञान प्रकट हो जाता है, ऐसे **''कण्वासः''** ऋषि जब **''त्वा''** आपकी **''स्तोमेभिः''** वेदमन्त्रों द्वारा स्तुति करते हैं और **''आयच्छन्ति''** आपकी खोज करते हैं तब **''आगहि''** आप प्राप्त होते हैं। अतः यज्ञ द्वारा ईश्वर की प्राप्ति वेद सम्मत है और यह ईश्वर स्तुति यज्ञ में केवल वेदमन्त्रों द्वारा ही की जाती है (सामवेद मन्त्र 382)। क्योंकि सामवेद मन्त्र 350 में कहा कि ईश्वर से निकले सब मन्त्र ईश्वर के समान ही शुद्ध हैं और तन, मन तथा वातावरण, सबमें शुद्धता फैलाते हैं । इसी प्रकार मन्त्रदृष्टा ऋषि की रचनाएँ शुद्ध होती हैं। क्योंकि उन रचनाओं का आधार भी वेदाध्ययन एवं योग समाधि द्वारा शुद्ध बुद्धि प्राप्त ऋषि द्वारा होती है **(योगाशास्त्र** सूत्र 1/48. **''ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'')**। और भी जब समाधि प्राप्त योगी ब्रह्मलीन होता है तो पताञ्जलि ऋषि ने योगशास्त्र सूत्र 1/49 में कहा–

''श्रुतानुमान प्रज्ञाभ्यामन्याविषया विशेषार्थत्वात्''

अर्थात् वेद और अनुमान ज्ञान से उत्पन्न होने वाली बुद्धि से समाधि प्राप्त योगी की बुद्धि विशेष अर्थ का साक्षात् करने वाली अन्य ही बुद्धि कहलाती है । व्यास मुनि ने इस सूत्र का भाव कहा है कि वेद का ज्ञान सुनकर जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह सामान्य विषय का ज्ञान है। परन्तु समाधि प्राप्त योगी की बुद्धि में ही परमेश्वर के स्वरूप अथवा सूक्ष्म पदार्थों के विशेष अर्थों वाला ज्ञान उत्पन्न होता है। अतः योगी की बुद्धि **''ऋतम्भरा''** एवं विशेष अर्थ वाली बुद्धि कही है ।

सामवेद मन्त्र 1363 में यह बात समझाई है कि जिसको यज्ञ प्यारा है वही ईश्वर के ध्यान में लीन होते हैं । अतः यह भारतभूमि की सनातन परंपरा रही है कि हमारे पूर्व के ऋषि–मुनि, भगवान राम, श्री कृष्ण, माता सीता एवं प्रजाएँ आदि सभी विभूतियाँ यज्ञ करती रहीं और ईश्वर के ध्यान में मग्न होकर, मोक्ष सुख को प्राप्त हो गईं। और यही विभूतियाँ ऋतम्भरा प्राप्त बुद्धि वाली थीं। अतः इन प्रमाणों पर विचार करते हुए हमें पुनः दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है कि हम गृहस्थाश्रम में अपने पूर्वजों की भांति किसी वेद एवं यज्ञ विरोधी सन्त के कहने पर यज्ञ कर्म का त्याग कभी न करें। क्योंकि सामवेद मन्त्र 830 दर्शाता है कि जो नर–नारी यज्ञ करते हैं **''विश्वा सौभगा''** उनके सौभाग्य का निर्माण होता है। अतः यह हमारे देश

का दुर्भाग्य एवं घोर आश्चर्य की बात है कि जहाँ यजुर्वेद मन्त्र 1/7 एवं सामवेद मन्त्र 732 एवं अन्य कई मन्त्र यज्ञ एवं वेदविद्या के विरोधियों से दूर होने की बात करते हैं वहां आज की भोली जनता, वेद विरोधी सन्तों की मिथ्या, चिकनी–चुपड़ी बातों में आकर ईश्वर द्वारा कहा यज्ञ छोड़ बैठी है । यजुर्वेद में कहा–''यज्ञम् कुरु, यज्ञम् कुरु'' यज्ञ करो, यज्ञ करो, और यजुर्वेद मन्त्र 1/2 में कहा–

''मा ह्वाः ते यज्ञपतिः मा ह्वार्षीत्''

ऐ यज्ञमान! तू और विद्वान, दोनों ही कभी भी यज्ञ का त्याग मत करो । अतः यदि सम्पूर्ण वैदिक संस्कृति को एक शब्द में कहा जाए तो वह पूजनीय शब्द ''यज्ञ'' ही है । ''यज्ञौ वै ब्रह्म'' यज्ञ ही ब्रह्म है । यजुर्वेद मन्त्र 31/16 में कहा–''**देवाः यज्ञेन् यज्ञम् अयजन्त**'' अर्थात् वेदों के ज्ञाता, विद्वान यज्ञ द्वारा ही ईश्वर की पूजा करते हैं । अतः हम मनुष्यों की आज्ञा मानकर कभी यज्ञ न छोड़ें क्योंकि ऐसे मनुष्य वेद विरोधी और अज्ञानी होते हैं और नहीं जानते कि पुनः यजुर्वेद मन्त्र 2/23 में ईश्वर ने स्वयं कहा कि जो मनुष्य यज्ञ को छोड़ देता है तो वह सब सुखों से हीन होकर, सदा दुःखी रहता है । दूसरा कि ऐसे मनुष्य को ईश्वर भी सदा दुःख देने के लिए छोड़ देता है और पुनः कहा– ''**रक्षसाम् भाग असि**'' कि ऐसा मुनष्य ''राक्षस'' कहलाता है । यज् धातु से यज्ञ शब्द का अर्थ है ''**देवपूजा, संगतिकरण, दानेषु**'' अर्थात् '**देवपूजा**' में माता–पिता, अतिथि, आचार्य एवं परमेश्वर यह पाँच चेतन एवं जीवित देव हैं जिनकी तन, मन, धन, प्राण से सेवा की जाती है । परन्तु देवपूजा में ईश्वर की पूजा को वेदाध्ययन, वेदों के अनुसार कर्म करना तथा अग्निहोत्र करना कहा है क्योंकि ईश्वर को हम वस्त्र, धन, इत्यादि नहीं दे सकते अपितु वही सबका दाता है ।

दूसरा '**संगतिकरण**' में विद्वान गुरु को सेवा द्वारा तृप्त करके विद्या लाभ प्राप्त करना कहा है । तीसरा '**दानेषु**' में सुपात्र को दान कहा है इत्यादि । इसी यज्ञ कर्म में अग्निहोत्र आ जाता है । अतः किसी भी कीमत पर हम आज यज्ञ का त्याग न करें और नित्य यज्ञ करें ।

दैनिक सन्ध्या (हवन) के मन्त्र

❖ ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य
धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

स्तुतिमन्त्र

❖ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रन्तन्न आ सुव।

❖ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीम् द्यामुतेमाम् कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

❖ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषम् यस्य देवा :।
यस्य छायाऽमृतम् यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हिवषा विधेम ।।

❖ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

❖ येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्व स्तभितम् येन नाकः ।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

❖ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयम् स्याम पतयो रयीणाम् ।।

❖ स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।।

❖ अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिम् विधेम ।।

अथ स्वस्तिवाचनम्

स्वस्तिवाचन मंत्र, ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना मंत्रों के पश्चात् बोलें।

1. अग्निमीड़े पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
   होतारं रत्नधातमम्।।

2. स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
   सचस्वा नः स्वस्तये।।

3. स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
   स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना।।

4. स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
   बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः।।

5. विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
   देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः।।

6. स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च
   स्वस्ति नो अदिते कृधि।।

7. स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता
   सं गमेमहि।।

8. ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
   तें नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।

9. येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
   उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये।

10. नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद् देवासो अमृतत्वमानशुः।
    ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये।।

11. सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये।।

12. को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये।

13. येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये।

14. य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः। ते
नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये।

15. भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्निं मित्रं
वरूणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये।

16. सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं
नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये।।

17. विश्वे यजत्रा आधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम श्रृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये।

18. अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा
द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तंये।।

19. अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये।।

20. यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये।।

21. स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन।।

22. स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा।।

23. इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशँसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वोर्यजमानस्य पशून् पाहि।।

24. आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरितासऽउद्‌भिदः। देवा नो यथा सदमिदवृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे।।

25. देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाम् रातिरभि नो निवर्तताम्। देवानाम् सख्यमुपसेदिमा वयं देवा नऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे।।

26. तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्‌वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये।

27. स्वस्ति नऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्र्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।

28. भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाम् सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

29. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि।

30. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने।।

31. ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रुपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु में।।

अथ शान्तिकरणम्

1. शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ।।

2. शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु।।

3. शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु।।

4. शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः।।

5. शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः।।

6. शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः। शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह श्रृणोतु।।

7. शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः।।

8. शं न सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः।।

9. शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः।।

10. शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः।।

11. शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः।।

12. शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु।।

13. शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः। शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा।।

14. इन्द्रो विश्वस्य राजति। शन्नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।।

15. शन्नो वातः पवताम् शन्नस्तपतु सूर्य्यः। शन्नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु।।

16. अहानि शंभवन्तु नः शं रात्रीः प्रति धीयताम्।
शन्नऽइन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्नऽइन्द्रावरूणा रातहव्या।
शन्नऽइन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शँयोः।।

17. शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शँयोरभिस्त्रवन्तु नः।।

18. द्यौः शान्तिरन्तरिक्षम् शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः' शान्तिर्बह्म शान्तिः सर्वम् शान्तिः शान्तिरेव शांन्तिः सा मा शान्तिरेधि।।

19. तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतंप्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतंभूयश्च शरदः शतात्।।

20. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमञ्ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसकंल्पमस्तु।।

21. येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

22. यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

23. येनेदंभूतं भुवनंभविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

24. यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तम्
सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

25. सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

26. स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। शं राजन्नोषधीभ्यः।।

27. अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु।।

28. अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

(तीन मन्त्रों से आचमन)

- ❖ ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।
- ❖ ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।।
- ❖ ओ३म् सत्यम् यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम् स्वाहा ।

(अंग स्पर्श के मन्त्र)

- ❖ ओ३म् वाङ्.मऽआस्येऽस्तु
- ❖ ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु
- ❖ ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु
- ❖ ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु
- ❖ ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु
- ❖ ओ३म् ऊर्वोमऽओजोऽस्तु
- ❖ ओ३म् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु

(अग्न्याधान का मंत्र)

- ❖ ओ३म् भूर्भुवः स्वः । ओम् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिवभूम्ना
पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।।

(अग्नि को प्रदीप्त करने का मन्त्र)

❖ ओ३म् उद्‌बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सम्सृजेथामयम् च।
अस्मिन्त्सधस्थेऽ अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत।।

(मन्त्रों से 3 समिदाधान)

❖ ओ३म् अयन्त त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ।।
इदमग्नये जातवेदसे–इदम् न मम ।

❖ ओ३म् समिधाग्निम् दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्या जुहोतन ।
सुसमिद्धाय शोचिषे घृतम् तीव्रम् जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा ।।
इदमग्नये जातवेदसे–इदम् न मम ।।

❖ ओ३म् तन्त्वा समिद्‌भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठय स्वाहा ।
इदमग्नयेऽङ्गिरसे–इदम् न मम ।।

('अयम् त इध्म आत्मा' से धृत की 5 आहुतियाँ)

❖ ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व
वर्धस्व चेद्धवर्द्धय चास्मान् प्रजया
पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ।।
इदमग्नये जातवेदसे–इदन्न मम ।

(जल सिंचन)

❖ ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व ।।
❖ ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व ।।
❖ ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व ।।

❖ ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञम् प्रसुव यज्ञपतिम् भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतम् नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचम् नः स्वदतु ।।

(2 आघारावाज्याहुतियाँ)

❖ ओ३म् अग्नये स्वाहा । इदमग्नये–इदम् न मम् ।।

❖ ओ३म् सोमाय स्वाहा । इदम् सोमाय–इदम् न मम् ।।

(2 आज्यभागाहुतियाँ)

❖ ओ३म् प्रजापतये स्वाहा । इदम् प्रजापतये–इदम् न मम।

❖ ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय–इदम् न मम ।।

(4 व्याहृति आहुतियाँ)

❖ ओ३म् भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये–इदम् न मम ।।

❖ ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा । इदम् वायवे–इदम् न मम ।।

❖ ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा ।। इदमादित्याय–इदम् न मम।।

❖ ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा।।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः – इदम् न मम ।

(स्विष्टकृत् होमाहुति)

❖ ओ३म् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचम् यद्वा न्यूनमिहाकरम् ।
अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वम् स्विष्टम् सुहुतम् करोतु मे ।
अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां
कामानाम् समर्द्धयित्रै सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ।।
इदभग्नये स्विष्टकृते–इदम् न मम ।

(मौन रहकर मन में प्राजापत्याहुति)

❖ ओम् प्रजापतये स्वाहा ।
इदम् प्रजापतये–इदम् न मम।।

(प्रातः/सांयकालीन के मन्त्र)

- ❖ ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।
- ❖ ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।
- ❖ ओ३म् ज्योतिः सूर्यःसूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।
- ❖ ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ।
  जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ।।

- ❖ ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।
- ❖ ओ३म् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।
- ❖ ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।
- ❖ ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या ।
  जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा ।

- ❖ ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ।
  इदमग्नये प्राणाय–इदन्न मम ।।
- ❖ ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ।
  इदम् वायवेऽपानाय–इदन्न मम ।।
- ❖ ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।
  इदमादित्याय व्यानाय–इदन्न मम ।।
- ❖ ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा।
  इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः–इदन्न मम ।।
- ❖ ओ३म् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरों स्वाहा।
- ❖ ओ३म् याम् मेधाम् देवगणाः पितरश्चोपासते तया
  मामद्य मेध्याऽग्ने मेधाविनम् कुरु स्वाहा ।
- ❖ ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
  यद् भद्रन्तन्न आ सुव स्वाहा।

❖ ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि
देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्तिम् विधेम स्वाहा।

❖ ओम् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु
श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागम्
प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशंसो
ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि स्वाहा।

❖ प्रत्युष्टङ् रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तङ् रक्षो
निष्टप्ताऽअरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि स्वाहा।।

❖ न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।
यो अग्नये ददाश हव्यदातये स्वाहा।।

❖ अप त्यम् वृजिनम् रिपुम् स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् स्वाहा।।

❖ श्रुष्टयग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह स्वाहा।।

❖ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयम् कृधि ।
मघवन् छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि
स्वाहा।।

❖ कदा मर्तमराधसम् पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रुवद्गिरः इन्द्रो अङ्ग स्वाहा ।।

❖ त्वम् हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रम् न शोचिषा स्वाहा ।।

❖ अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितृन्सत्पते अहा दिवा नक्तम् च रक्षिषः
स्वाहा।।

❖ ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो
देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा।

❖ ओ३म् सर्वम् वै पूर्णं स्वाहा ।

प्रार्थना

पूजनीय प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिये।
छोड़ देवें छल कपट को मानसिक बल दीजिये।।

वेद की बोलें ऋचायें सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे शोक सागर से तरें।।

अश्वमेधादिक रचायें यज्ञ पर उपकार को।
धर्म मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को।।

नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें।।

भावना मिट जाये मन से पाप अत्याचार की।
कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर नारी की।।

लाभकारी हो हवन हर देहधारी के लिए।
वायु जल सर्वत्र हो शुभ गन्ध को धारण किये।।

स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम–पथ विस्तार हो।
इदन्नमम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो।।

हाथ जोड़ झुकाएँ मस्तक वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणा रूप करुणा आपकी सब पर रहे।।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है

उपनिषद् में कथन आता है कि एक बार बहुत से ब्रह्मवेता आपस में विचार–विमर्श कर रहे हैं कि हमारा जन्म, पृथ्वी की रचना एवं समय इत्यादि की रचना किसने की है। आगे कहा–

'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिम् स्वगुणैर्निगूढाम्'

अर्थात् रचना इत्यादि सबका कारण केवल एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर है जिसने अपने आपको अपनी ही शक्तियों से छिपा रखा है। इस प्रकार ऋषि–मुनियों ने ध्यान योग के द्वारा प्रत्येक युग में ईश्वर के गुण, स्वभाव एंव शक्ति को महसूस किया है। युजर्वेद कहता है:

'तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय''

अर्थात् हे ईश्वर! केवल तुझे ही जानकर मृत्यु को जीता जा सकता है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा मार्ग मृत्यु को जीतने का नहीं है। आज के भौतिकवाद में फंसा प्राणी ईश्वर की सत्ता के विषय में कई प्रकार की भ्रांतियों से ग्रस्त है। विद्वान–जन कहते हैं कि ईश्वर के सत्यस्वरूप का बोध अथवा ईश्वर के गुण केवल ईश्वर ही बता सकता है। इसलिए तुलसी ने भी कहा है–

'जिन जानो दे तुम जनाई। जानत तुमहि–तुमहि होई जाई।।'

अर्थात् हे ईश्वर! जिस किसी को भी तू अपने स्वरुप अथवा गुण आदि का बोध कराना चाहता है वो ही तुझे जान सकता है।

अतः पिछले तीन युगों एवं आज के भी ऋषि मुनियों ने यह गम्भीर ब्रह्म विषय स्पष्ट करते हुए समझाया है कि ईश्वर ही सृष्टि के आरम्भ में अपने स्वरुप, सृष्टि रचना एवं समस्त कर्म आदि का ज्ञान चारों वेदों को अंगिरा आदि चार ऋषियों के हृदय में प्रकट करके देता है। इसी आधार पर **पातञ्जल** योगदर्शन के सूत्र में कहा–

'स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'

अर्थात् ईश्वर ही हमारे पूर्वजों का प्रथम गुरु है क्योंकि ईश्वर को मृत्यु नहीं आती। यहाँ यह विचारणीय है कि जब महाप्रलय में यह तीनों लोक नष्ट हो जाते हैं, उस समय कोई भी ऋषि–मुनि, विद्वान शेष नहीं रहता। उसके बाद पुनः ईश्वर सृष्टि रचना करता है और उस नई सृष्टि में कोई भी ऋषि–मुनि आदि ज्ञान देने के लिए नहीं होता क्योंकि सब ज्ञानी पिछली सृष्टि में शरीर त्याग चुके होते हैं। केवल ईश्वर ही मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। अतः ईश्वर ही नई सृष्टि में सर्वप्रथम चार ऋषियों को वेदों का ज्ञान देता है। व्यास मुनि ने भी वेदान्त शास्त्र में **'शास्त्रयोनित्वात्'** कह कर यह रहस्य प्रकट किया है कि उस ईश्वर की पूजा करो जिसमें से चारों वेदों का ज्ञान निकला है। ऐसे ही प्रत्येक ऋषि ने ईश्वरीय वाणी चारों वेदों के समक्ष अपना मस्तक झुकाया है। मनुस्मृति में भी कहाः

'त्रयम् ब्रह्म सनातनम् दुदोह यज्ञसिद्धयर्थम्'

अर्थात् ऋषियों ने यज्ञ की सिद्धि के लिए चारों वेदों के मन्त्रों का दोहन किया। अतः वेद शास्त्रों द्वारा यह सिद्ध है कि चारों वेदों में स्वयं ईश्वर ने उपदेश किया है। वेदवाणी किसी ऋषि–मुनि अथवा साधु सन्त की वाणी नहीं है। यह केवल एक सर्वशक्तिमान, सृष्टि रचियता एवं सर्वव्यापक ईश्वर से उत्पन्न अलौकिक वाणी है। तब यह विचार सत्य सिद्ध होता है कि ईश्वर ने जो–जो अपने गुण, कर्म और स्वभाव स्वयं वेदों में कहे हैं केवल वही सत्य हैं, अन्य नहीं! क्योंकि ईश्वर के अतिरिक्त ईश्वर का ज्ञान देने में कौन समर्थ हो सकता है। और यदि हम कहें कि वेदों के स्वाध्याय के बिना अथवा वेदों में कहे यज्ञ, योगाभ्यास, माता–पिता, ऋषियों की सेवा इत्यादि शुभ कर्मों को किए बिना हमने किसी अन्य मार्ग के द्वारा ईश्वर के स्वरुप को जान लिया है तो इसका अर्थ यह होगा कि हम स्वयं ही ईश्वर से बड़े हो गए हैं और ईश्वर के बताए हुए ज्ञान के बिना ही हमने ईश्वर को जान लिया है। वस्तुतः ऐसा कदापि भी संभव नहीं है कि कोई ईश्वर के बताए बिना अपने ही मार्ग द्वारा ईश्वर को जानने में समर्थ हो जाए। सृष्टि के आरम्भ में दिया यह ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के सब मनुष्यों के कल्याणार्थ ही ईश्वर ने दया करके चार ऋषियों को दिया था। अथर्ववेद कहता है –

"देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति"

अर्थात् हे मनुष्य! तू ईश्वर के अविनाशी काव्य चारों वेदों की तरफ देख अर्थात् इनका अध्ययन कर। जो कभी नहीं नष्ट होते, और न जीर्ण होते हैं यह ज्ञान सदा बहार है। यजुर्वेद कहता है –

'शुश्रुम् धीराणाम्'

हम यह ज्ञान ध्यान में मग्न योगियों से सुनते आए हैं। श्री कृष्ण स्वयं गीता में कहते हैं –

'वेदानाम् सामवेदः अस्मि'

अर्थात् वेदों में मैं सामवेद हूँ। वाल्मीकि मुनि श्री राम के बारे में उद्घोष करते हैं–

"सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः समाधिमान्"

अर्थात् श्री राम चारों वेदों को वेदाङ्ग सहित जानने वाले तथा योग समाधि लगाने वाली विभूति हुए हैं। स्वयं तुलसी श्री राम को कहते हैं–

'बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं'

अर्थात् श्री राम सम्पूर्ण आयु गुरु वशिष्ठ से वेद सुनते रहे हैं। इन सब विद्याओं का सारांश है कि पिछले तीनों युगों की भांति आज पुनः हम ईश्वर एवं शुभ कर्म आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए चारों वेदों का स्वाध्याय प्रारम्भ करें जो कि प्रत्येक मानव को ईश्वरीय आज्ञा भी है।

ईश्वर के बिना सुख नहीं

सब वेद, शास्त्र आदि पुरातन सद्ग्रन्थ सुख का मुख्य साधन ईश्वर प्राप्ति को ही कहते हैं । सांख्य–शास्त्र के रचयिता मुनि कपिल ने सूत्र 1/1 में स्पष्ट कह दिया है कि आध्यात्मिक, आधि भौतिक, आधि दैविक, यही तीन प्रकार के मुख्य दुःख हैं, जिनका ईश्वरीय ज्ञान द्वारा समूल नाश करना ही मोक्ष–परमानन्द की प्राप्ति है । यजुर्वेद अध्याय 31, ऋग्वेद मण्डल 10 तथा सामवेद मंत्र 617 से 621 तक में रजो गुण, तमोगुण तथा सतोगुण वाली प्रकृति से ईश्वर की शक्ति ने सृष्टि की रचना की है । प्रकृति जड़ है, अतः सम्पूर्ण सृष्टि की रचना जिसमें सूर्य, चाँद, पृथ्वी, सोना, चाँदी, अन्न, पेड़–पौधे, मनुष्य एवं पशु–पक्षियों के शरीर आदि अनेक पदार्थ आते हैं, समस्त प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण जड़ एवं नाशवान् हैं । अतः जब जीव केवल प्रकृति के पदार्थों की ओर आकर्षित होता है तो इन पदार्थों में पहले से ही रज, तम एवं सत्व यह विषय–विकारी एवं नाशवान तत्त्व होने के कारण, इन पदार्थों से जीव को केवल इन्द्रियों द्वारा विषय–विकारी, नाशवान् सुख ही प्राप्त होता है, जो वर्तमान में भी और मृत्यु के पश्चात् कर्मफल भोगते समय दुःख देता है । इस विषय में यजुर्वेद मन्त्र 31/18 ने कहा–

"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।"

अर्थः–

(एतम् महानतम्) मैं इस अनन्त गुणों युक्त ईश्वर, जो **(आदित्यवर्णम्)** सूर्य के समान ज्योतिस्वरुप वाला, परन्तु स्वयं प्रकाशक है, उस **(पुरुषम् वेद)** पूर्ण परमात्मा को जानता हूँ और वह परमात्मा **(तमसः परस्तात्)** अविद्या आदि क्लेश एवं अंधकार से परे है ।

(तम् एव) केवल इस स्वयं प्रकाशक अनन्त गुण युक्त परमात्मा को ही

(विदित्वा) जानकर **(मृत्युम्)** मृत्यु रुपी क्लेश से **(अति एति)** पार हुआ जाता है । **(अयनाय)** दुःखों का नाश एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए **(अन्यः पन्थाः)** इस से भिन्न कोई मार्ग **(न विद्यते)** नहीं जाना जाता।

भाव यही है कि ईश्वर ने स्वयं अपना स्वरुप एवं अनन्त गुण केवल वेदों में कहे हैं और इस मंत्र के अनुसार भी सबसे महान अनन्त गुण–युक्त स्वयं प्रकाशक, आनन्दस्वरुप केवल इसी परमात्मा को वेदाध्ययन, यज्ञ एवं योगाभ्यास आदि द्वारा जानकर ही मनुष्य मृत्यु–रुपी क्लेश को पार कर सकता है एवं इस ईश्वर को जाने बिना मोक्ष प्राप्ति के लिए अन्य कोई भी मार्ग नहीं है । अर्थात् केवल धन–परिवार एवं संसारी पदार्थ हमको सदा सुख प्राप्त नहीं करा सकते, यह स्पष्ट अमीरों अथवा गरीब दोनों के जीवन को जाँच कर देखा जा सकता है । हाँ, यही परिवार एवं धन जब राजा हरिश्चन्द्र, दशरथ, श्रीराम, सीता, मदालसा, व्यास मुनि आदि पिछली असंख्य विभूतियों द्वारा ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रयोग किया गया, तब ही उन्होंने परम सुख को प्राप्त किया था । क्योंकि उन्होंने ऋषियों द्वारा वेद–विद्या का ज्ञान पाकर यह परिवार के शरीर, धन–सम्पदा आदि जड़–पदार्थ एवं शरीर में रहने वाली चेतन जीवात्मा एवं चेतन परमात्मा को अलग–अलग जान लिया था । वेद प्रकृति रचित पदार्थों के दो ही कारण कहते हैं–जिज्ञासु के लिए यह पदार्थ मोक्ष प्राप्ति कराते हैं तथा अन्य के लिए भोग–विलास में लिप्त कराकर जन्म–मृत्यु रुपी दुःख के सागर में डूबोते हैं । कपिल मुनि स्व–रचित सांख्य शास्त्र सूत्र 1/48 में यही बात कह रहे हैं–

"तत्र प्राप्तविवेकस्याना वृत्तिश्रुतिः"

अर्थात् वेद कहता है कि जड़ पदार्थ एवं चेतन तत्त्व, इन दोनों में विवेक प्राप्त करके (जड़ और चेतन को अलग–अलग समझकर) ही मोक्ष का सुख प्राप्त होता है । अतः यहाँ यह भी समझ लेना उचित होगा कि प्रकृति से बना समस्त संसार जड़ है एवं असंख्य जीवात्माएँ तथा एक परमात्मा, यह दोनों चेतन तत्त्व हैं ।

इस प्रकार प्रकृति, जीव तथा परमात्मा वेदों ने यह तीन अविनाशी तत्त्व कहे हैं । जैसा कि यजुर्वेद मंत्र 40/1 में कहा–**(यत् इदम् ईशावास्य जगत्याम् जगत्)** अर्थात् प्रकृति से रचित जड़ जगत एवं चेतन जीवात्माओं

का जगत, (क्योंकि यहाँ जगत्याम् जगत् कहकर दो जगत की बात कही है) इन दोनों में ही परमात्मा बसा हुआ है । इन दोनों जड़ एवं चेतन जगत में बसा हुआ यह तीसरा अविनाशी तत्त्व स्वयं परमात्मा है । जहाँ वेदान्त शास्त्र के मुनि व्यास ने **"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"** यह पहला सूत्र कहकर प्राणी को ईश्वर प्राप्ति की जिज्ञासा प्रबल करने की प्रेरणा दी है, वहीं सांख्य शास्त्र के मुनि कपिल ने भी सूत्र 1/5 में कह दिया– **(मोक्षस्य)** मोक्ष का सुख कहा है। अर्थात् शेष केवल जड़ पदार्थों एवं जड़ इन्द्रियों द्वारा प्राप्त भौतिक सुख, मोक्ष सुख के सामने दुःखदायी, नाशवान एवं इस प्रकार व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। यहाँ प्राणी को चेतने की अत्यन्त आवश्यकता है कि मानव प्रकृति रचित जड़ पदार्थों के भौतिक सुख में मानव शरीर को व्यर्थ कर दे अथवा वेदाध्ययन, यज्ञ आदि द्वारा पदार्थों का धर्मानुसार उचित प्रयोग करके मोक्ष सुख को प्राप्त करे। तथा मानव यहाँ यह भी निश्चित करे कि वेदों में कहे, ईश्वर को प्राप्त किए बिना मोक्ष प्राप्ति असम्भव है। अतः वेद विरुद्ध, मिथ्या भाषणों से अलग रहे। अब प्रश्न है कि ईश्वर का स्वरुप एवं ईश्वर सिद्धि के बिना ईश्वर की उपासना व्यर्थ है। आज प्रायः एक ईश्वर के अविचल एवं अविनाशी स्वरुप के विषय में कई भ्रांतियाँ हैं। यह तो निश्चित प्रमाण है कि चारों वेद ईश्वर से उत्पन्न ज्ञान है। छः शास्त्र, उपनिषद्, महाभारत (गीता भी) एवं वाल्मीकि रामायण इत्यादि ऋषियों द्वारा लिखे ग्रंथ हैं। प्रश्न यह है कि ऋषियों को ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ कि उन्होंने ऐसे ग्रन्थ लिख दिए? सिद्धान्त यह कहता है कि आज भी भील जाति जो घने जंगल में रहती हैं, वह पूर्णतः अज्ञानी हैं। क्योंकि उन्हें आज तक किसी ने भी विज्ञान, पढ़ाई–लिखाई भोजन बनाना, मकान बनाना, कपड़े बनाना, कपड़े पहनना आदि किसी भी विषय का ज्ञान नहीं दिया और वह स्वयं ज्ञानी हो नहीं सकते । किसी नवजात शिशु को भी यदि जंगल में रखा जाए और उसे पढ़ाया –लिखाया न जाए तथा उससे किसी भी भाषा में बातचीत न की जाए तो बड़ा होकर वह कोई भी भाषा नहीं बोल पाएगा। क्योंकि माँ–बाप आदि ने उसे बोलना सिखाया नहीं था । अतः हम इस सिद्धान्त को रट लें–याद कर लें कि बिना किसी के ज्ञान दिए किसी अन्य को ज्ञान नहीं हो सकता । ज्ञान देने वाले ज्ञानी का होना अति आवश्यक है–यह सिद्धान्त है और यह सिद्धान्त बदली नहीं किया जा सकता। इसी

सिद्धान्त के आधार पर पताञ्जलि ऋषि ने योग–शास्त्र सूत्र 1/26 में कह दिया–

"स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"

अर्थः–

(स एष) वह ईश्वर हमारे **(पूर्वेषाम्)** पूर्व के गुरुओं का **(अपि)** भी **(गुरुः)** गुरु है **(कालेन अनवच्छेदात्)** क्योंकि वह समय एवं मृत्यु के बन्धन से रहित है ।

भावार्थः–

वेदों में कहा, **"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वम् अकल्पयत्"** अर्थात जैसे इस सृष्टि में सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि द्वारा सृष्टि रचना, पालना एवं संहार अनादि है। अनन्त बार पृथ्वी बनी है और बिगड़ी है, प्रत्येक पृथ्वी के रचना के आरम्भ में ईश्वर अपने दया भाव से मनुष्यों को चार वेदों का ज्ञान देता है । इस सृष्टि के आरम्भ में भी लगभग एक अरब 97 करोड़ से कुछ अधिक वर्ष पहले अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषियों के हृदय में अपनी सामर्थ से ईश्वर ने चारों वेदों का ज्ञान प्रकट किया था । उसके पश्चात् उनसे शिष्य परम्परा द्वारा आज तक वेद एवं वेदों में कही योग–विद्या का ज्ञान पृथ्वी पर निरन्तर चला आ रहा है । अंगिरा आदि चारों ऋषि भी शरीर त्याग चुके हैं । और अनगिनत ऋषि–मुनियों द्वारा यह ज्ञान पृथ्वी पर दिया गया, वो महर्षि कपिल, श्रृंगी, विश्वामित्र, अगस्त्य आदि अनगिनत ऋषि भी शरीर त्याग चुके हैं । जब सृष्टि का संहार होगा तब उस समय के ऋषि–मुनि भी शरीर त्याग देगें। तब एक परम तत्त्व परमेश्वर जो जन्म–मृत्यु के बन्धन से रहित है वह ही शेष रहता है। जब नई सृष्टि की रचना होती है तब ईश्वर ही पुनः चारों वेदों का ज्ञान अपने सामर्थ द्वारा चार ऋषियों के हृदय में प्रकट करता है। अतः परमेश्वर को पूर्व के महर्षियों का भी गुरु कहा है । इसके पश्चात् महर्षि सबके गुरु होते आए हैं और वेद विद्या का ज्ञान देते रहे हैं। अतः व्यास मुनि जी कहते हैं कि जैसे इस सृष्टि के प्रारम्भ में परमेश्वर की सर्वज्ञता सिद्ध है वैसे ही सृष्टि के अन्त में भी जाननी चाहिए।

अतः सनातन विद्या यह सिद्ध करती है कि परमेश्वर जो कि हमारे पूर्वजों का प्रथम गुरु है उससे ही चारों वेदों का ज्ञान निकला जिसे यजुर्वेद

मंत्र 31/7 में इस प्रकार कहा–

"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुः तस्मादजायत।"

(तस्मात् यज्ञात्) उस पूर्ण पूजनीय **(सर्वहुतः)** जिस परमेश्वर को सब कुछ समर्पित किया जाता है, उस परमेश्वर से **(ऋचः)** ऋग्वेद **(सामानि)** सामवेद **(जज्ञिरे)** उत्पन्न होते हैं तथा **(तस्मात्)** उस परमेश्वर से **(छन्दांसि)** अथर्ववेद **(जज्ञिरे)** उत्पन्न होता है। **(तस्मात्)** उस परमेश्वर से **(यजुः)** यजुर्वेद (अजायत) उत्पन्न होता है।

अतः ईश्वर के अनन्त गुणों में यह गुण भी है कि ईश्वर से सृष्टि के आरम्भ में चारों वेद उत्पन्न होते हैं । अतः हम इस ईश्वर की पूजा करें जिससे चारों वेद उत्पन्न होते हैं और ऐसा ईश्वर एक ही है। इन गुणों वाला कोई अन्य ईश्वर नहीं है कि जिससे चारों वेद उत्पन्न हुए हों अथवा जीवात्मा ही चारों वेद उत्पन्न कर दे। जीवात्मा से वेद उत्पन्न नहीं होते, किसी अन्य देवी–देवता से भी वेद उत्पन्न नहीं होते। इसीलिए वेदान्त शास्त्र के ऋषि व्यास सूत्र 1/2 में कह रहे हैं–**"जन्माद्यस्य यतः"** कि जिस ईश्वर से पृथ्वी उत्पन्न, पालन एवं प्रलय को प्राप्त होती है और जिससे चारों वेद उत्पन्न होते हैं, उस ईश्वर की पूजा करो । अतः ईश्वर के समान अनन्त गुणों वाला पूर्ण पुरुष अन्य कोई भी नहीं हो सकता। कई कहते हैं कि जीवात्मा ईश्वर का अंश है। यह प्रमाण में नहीं घटती अर्थात् अप्रमाणिक है। आगम–प्रमाण में ऋषि और वेद ही आते हैं । वेद जीव को ईश्वर नहीं कहता। जैसे सच्चिदानन्द भी ईश्वर का ही नाम है जिसका अर्थ है सत्य, चेतन एवं आनन्द। अब जीवात्मा भी अनादि सत्य है एवं चेतन है। यह दो गुण ईश्वर के भी हैं परन्तु ईश्वर सदा आनन्द–स्वरुप है । ईश्वर के आनन्द–स्वरुप में किसी भी क्षण कोई कमी नहीं आ सकती, और न ही ईश्वर को प्रकृति के तीनों गुण अपनी तरफ आकर्षित कर सकते हैं । और न ही ईश्वर कर्म तथा कर्मफल का भोक्ता है। अतः ईश्वर प्रकृति के तीनों गुणों से परे है एवं तीनों गुणों में कभी नहीं फँस सकता। परन्तु जीव कर्म करता है और ईश्वर उसके कर्मों का फल देता है। जीव में लगाव का गुण है। अतः वेद कहता है–**परिष्वंगधर्मी** (लगाव का गुण) होने के कारण जीव प्रकृति से सम्पर्क कर बैठता है तथा अपने शुद्ध चेतन अविनाशी स्वरुप को

भूल जाता है। परन्तु ईश्वर प्रकृति से सम्पर्क नहीं करता और ईश्वर अपने स्वरुप को कभी नहीं भूलता। अतः जीव ईश्वर नहीं है। अतः हम एक ईश्वर की पूजा करें जिससे वेद निकले, जिस ईश्वर ने सृष्टि बनाई इत्यादि। जीव और प्रकृति अथवा प्रकृति के बने पदार्थों की पूजा न करें।

उपर कहे सिद्धान्त के अनुसार ऋषियों ने वेदों को सुना, उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और ऋषियों द्वारा शास्त्र आदि की रचना हुई। यदि हम वेदों में कहे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव जो कि वेदों में स्वयं ईश्वर ने बताए हैं, उनके विपरीत जाते हैं और अपना कोई मनघड़न्त ईश्वर बना लेते हैं, तो निश्चित ही यह असत्य, अविवेक एवं धन आदि कमाने का स्वार्थपूर्ण रास्ता कहा जाएगा। क्योंकि ईश्वर न बताए और हम अपनी बुद्धि से ईश्वर एवं सृष्टि के रहस्य को स्वयं जान लें, तब तो हम स्वयं ही ईश्वर बन गए, जो कि सर्वदा असम्भव है। अतः ईश्वर का स्वरुप एवं गुण, कर्म, इत्यादि हम वेदों द्वारा ही जानने का प्रयत्न करें। वेद अनादि, अनन्त एवं ईश्वर की अमरवाणी है जिसे स्वयं ईश्वर ने अथर्ववेद मंत्र 10/8/32 में इस प्रकार कहा–

"देवस्य पश्य काव्यम् न ममार न जीर्यति"

अर्थात् हे जीव तू **(देवस्य)** उस सब कुछ देने वाले ईश्वर के **(काव्यम्)** काव्य अर्थात् वेद को **(पश्य)** देख अर्थात् सुन एवं अध्ययन कर। यह वेदों का ज्ञान **(न ममार)** कभी नष्ट नहीं होता–अनादि है तथा **(न जीर्यति)** न कभी जीर्ण होता है। जिज्ञासु बनकर यदि हम सत्य का चिंतन करेंगे तो पाएँगे कि भगवद्गीता आदि ग्रंथ सत्य होने पर भी महाप्रलय में शेष नहीं रहेंगे और न ही उस समय कोई ऋषि मुनि बचेंगे। तब अगली सृष्टि में ईश्वर ही इन्हीं चारों वेदों का ज्ञान चार ऋषियों को देता है। और यह ईश्वरीय नियम अटल है तभी इस मंत्र में कहा कि यह वेद--विद्या न कभी मरती है न कभी जीर्ण होती है। अतः इस अविनाशी विद्या को सुनकर जीव सभी सुख प्राप्त करके सौभाग्य का निर्माण करे। सामवेद मंत्र 830 में स्पष्ट कहा कि जब हम वेद सुनते हैं और यज्ञ करते हैं तो हमारे **(सौभग अभि असृग्रम्)** सौभाग्य का निर्माण होता है।

ईश्वर का स्वरुप यजुर्वेद मंत्र 40/8 में देखें–

"स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽ
र्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यःसमाभ्यः।।"

(पर्य्यगात्) परि+अगात्–सर्वव्यापक(शुक्रम्)

सर्वशक्तिमान अर्थात् सृष्टि रचना में किसी भी प्रकार का न्याय छोड़कर अन्याय न होने देना और इस प्रकार न्यायपूर्ण कर्म करना अर्थात् इसका यह अर्थ नहीं है कि ईश्वर न्याय को छोड़कर धर्म–अधर्म युक्त कर्म कुछ भी करे। उसे ऋग्वेद मंत्र 1/90/9 ने **'अर्यमा'** कहा है, जिसका अर्थ है न्याय करने वाला। अतः वह सदा न्याय करता है। **(अकायम्)** शरीर रहित **(अव्रणम्)** छिद्र–रहित, जिसके दो टुकड़े नहीं हो सकते, जिसमें छेद नहीं हो सकता **(अस्नाविरम्)** नाड़ि आदि के बन्धन से रहित **(शुद्धम्)** अविद्या आदि दोषों से रहित **(अपापविद्धम्)** पाप–रहित **(कविः)** सर्वज्ञ–त्रैकालज्ञ **(मनीषी)** सब जीवों की मनोशक्तियों को जानने वाला **(परिभूः)** दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला **(स्वयम्भूः)** अनादिस्वरुप वाला जिस की संयोग से उत्पत्ति नहीं और वियोग से विनाश नहीं होता और जिसका गर्भवास जन्म, वृद्धि और क्षय नहीं होते हैं, **(याथातथ्यतः)** यथार्थता से, यथावत रीति पूर्वक **(सः)** वही परमात्मा पूजनीय है और वह पूरे संसार का केवल एक ही पिता है **(शश्वतीभ्यः)** सनातन, अनादि स्वरुप वाला, अपने स्वरुप की दृष्टि से उत्पत्ति एंव विनाश से रहित **(समाभ्यः)** प्रजा के लिए **(अर्थान्)** वेद के द्वारा सब पदार्थों का (व्यदधात्) अच्छी तरह से उपदेश करता है। ऋग्वेद मंत्र 1/1/1 में कहा–

"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।।"

अर्थ–

(अग्निम्) मैं ईश्वर की **(ईळे)** स्तुति करता हूँ । वह ईश्वर **(यज्ञस्य)** यज्ञ का **(होतारम्)** देने वाला, **(पुरोहितम्)** संसार रुपी पुरी का हित करने वाला, **(ऋत्विजम्)** प्रत्येक ऋतु में पूजनीय, **(रत्नधातमम्)** पृथिवी और सोना–चांदी आदि सब रत्नों को धारण करने वाला, **(देवम्)** इन रत्न एवं संसार के सब पदार्थों को देने वाला है।

इस मंत्र में अग्नि शब्द का अर्थ अग् धातु से अग्रणी किया गया है।

अग्रणी अर्थात् सबसे पहले । ऋग्वेद मंत्र 10/53/6 में ईश्वर ने मुनष्य के लिए कहा, "**मनुः भव**" अर्थात् वेदमन्त्रों का मनन करने वाला बन। यहाँ इस मंत्र में मनन–चिन्तन ही चल रहा है। ऋग्वेद मंत्र 10/129/1 में कहा–

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्"।।

अर्थः–

उस प्रलयावस्था में असत्य नहीं था अर्थात् और प्रकट रुप में भी कुछ नहीं था। अब जो ऊपर अग्नि, जल एवं घूल के कणों वाला आकाश दिखाई दे रहा है, यह भी नहीं था। सूक्ष्म जल आदि कुछ भी नहीं थे। अगले मंत्र में कहा–उस प्रलयावस्था में जन्म–मृत्यु, अमृत अर्थात् मोक्ष, दिन–रात आदि कुछ भी नहीं था, केवल स्वधया–स्वयम्भू अर्थात् जन्म मृत्यु, कारण और कार्य से रहित स्वयं अपनी सत्ता रूप अर्थात् स्वयम्भू केवल एक ईश्वर था। "**तस्मात् अन्यत् किम् चन परः न आस**" अर्थात् इस ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। अर्थात् जब महाप्रलय हो जाती है तब दूसरी सृष्टि की रचना होने से पहले यह मंत्र कहता है कि लम्बे समय तक न सत्य, न असत्य अर्थात् उपर कहे जल, आकाश, जन्म–मृत्यु आदि तत्त्व कुछ भी नहीं होते। अगले मंत्रों में कहा कि प्रकृति अपने मूल रुप में होती है और रचना करने के अयोग्य होती है। मुक्त जीवात्माएँ होती है तथा कर्म बन्धनों में सुषुप्त अवस्था में पड़ी अनन्त जीवात्माएँ सृष्टि रचना होने का इंतजार करती हैं, जिसमें उन्हें कर्मानुसार मनुष्य अथवा पशु–पक्षी इत्यादि की योनियाँ प्राप्त होती हैं। इन्हीं मंत्रों से यह निष्कर्ष निकल रहा है कि उस प्रलयावस्था में केवल ईश्वर होता है। ऋग्वेद के उपर कहे मंत्र में "**अग्निम् ईळे**" अर्थात् मैं सबसे अग्रिणी (सृष्टि रचना से पहले) विद्यमान ईश्वर की स्तुति करता हूँ। भाव यह है कि भूतकाल में अनन्त बार पृथिवी बनी एवं ईश्वर की व्यवस्था में प्रलय को प्राप्त हुई तथा पुनः बनी, परन्तु हर बार ईश्वर पृथिवी से पहले होता है, तीनों लोकों की रचना करने के बाद पृथिवी आदि प्रत्येक लोक में समा जाता है, तभी ईश्वर को सर्वव्यापक कहते हैं। अतः हम पृथिवी एवं पृथिवी के पदार्थों की रचना से पहले भी विद्यमान ईश्वर की पूजा

करें। ईश्वर सृष्टि की रचना करता है । हम रचना की पूजा न करें, रचनाकार की पूजा करें । और यज्ञ कर्म को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ पूजा कहा है।

''येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा'' यजुर्वेद के इस मंत्र संख्या 32/6 में कहा–**(येन)** जिस ईश्वर ने **(उग्रा द्यौ)** उग्र स्वभाव वाले सूर्य आदि लोकों **(च पृथिवी)** और इस पृथिवी को **(दृढ़ा)** धारण किया है । **(कस्मै देवाय)** उस सुखस्वरुप और सब पदार्थ देने वाले ईश्वर की हम **(हविषा विधेम)** हवन एवं योगाभ्यास आदि द्वारा विशेष भक्ति करें। इस जैसा अन्य कोई ईश्वर न था, न है और न होगा। मंत्र का मनन करने पर तथ्य प्रकट होता है कि ईश्वर एक ही है, जिसने संसार रचा । उसी ईश्वर ने सूर्य, चन्द्रमा और पृथिवी को स्वयं धारण किया हुआ है अर्थात् सबमें समाया हुआ है। जरा विचार करें कि जब ऐसे सर्वशक्तिमान ईश्वर ने पृथिवी को भी धारण किया हुआ जैसे कि आप और हम वस्त्र धारण कर लेते हैं।

तब सम्पूर्ण विश्व को भी बल, बुद्धि आदि शक्तियाँ देने वाले उस सर्वशक्तिमान ईश्वर से इस पृथिवी को छीनकर कौन ले जा सकता है । परन्तु आज हम कई संतों से बिना वेदमन्त्र विचारे कई अप्रमाणिक कथाएँ सुनते हैं, नाचते हैं–गाते हैं और तालियाँ बजाते हैं । इस प्रकार मिथ्यावाद को बढ़ावा देते हैं। कथा इस प्रकार है–

हिरण्याक्ष नामक असुर ने पृथिवी को चटाई की तरह लपेटकर अपने सिर के नीचे रख लिया और सो गया। विष्णु वराह का रुप धर कर आए और हिरण्याक्ष के सिर के नीचे रखी पृथिवी को अपने मुँह में रख लिया। फिर तो दोनों में युद्ध हुआ और वराह ने हिरण्याक्ष असुर को मार डाला। प्रथम तो यजुर्वेद मंत्र 3/6 प्रमाण देता है कि **''अयं गौः पुरः प्रयत्''** अर्थात यह पृथिवी का गोला आकाश में सूर्य के चारों ओर बिना रुके घूमता रहता है। और आज का विज्ञान भी पृथिवी को गोल ही कह रहा है, तब पृथिवी को चटाई की तरह लपेटना और सिर के नीचे रख लेना, यह कहाँ तक सत्य हो सकता है अर्थात् इसमें कुछ भी सत्य नहीं है। दूसरा जैसा कि ऊपर वेदमन्त्र में कहा कि पृथिवी को तो ईश्वर ने धारण किया है, तब ईश्वर के सामने तिनके भर की भी शक्ति न रखने वाला कोई कथित हिरण्याक्ष जैसा राक्षस ईश्वर से पृथिवी को छीनने की हिम्मत भी कैसे कर सकता है। हम

जब झूठ सुनते हैं तभी तो हमारे घरों में प्रायः छोटे—बड़े झूठ बोलने के आदि हो जाते हैं। अतः हम झूठ से बचें और केवल सत्य को धारण करें।

वेदान्त शास्त्र के रचयिता व्यास मुनि जी ने प्रथम सूत्र में ही उपदेश दिया—**'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'** अर्थात् हमें ब्रह्म को पाने की इच्छा पर विचार करना चाहिए । दूसरे सूत्र में कहा कि वह ब्रह्म क्या है जिसकी हमें इच्छा करनी चाहिए, उसका स्वरुप क्या है? तो उत्तर दिया—**'जन्माद्यस्य यतः'** अर्थात् जिस ईश्वर के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलयादि होती है, वही ईश्वर है । अतः यहाँ भी ऋषि व्यास समझा रहे हैं कि उस ईश्वर को पाने की इच्छा करो, जो संसार का रचयिता, पालन कर्त्ता एवं संहारकर्त्ता है तथा संहार के पश्चात् पुनः सृष्टि की रचना करता है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम वेद—शास्त्रों के मर्म को वेदों के ज्ञाता विद्वानों से न जानने के कारण प्रायः वेद विरुद्ध मनघड़न्त ईश्वर की कल्पना कर बैठते हैं। और इस प्रकार असत्य की पूजा के द्वारा दुःख उठाते हैं । इस पर प्रायः असत्यवादी यह झूठा दिलासा दे देते हैं कि भगवान तुम्हारी परीक्षा ले रहे हैं, अतः घबराना मत। यहाँ हम यजुर्वेद मंत्र 7/48 आदि को ध्यान में रखें, जिसमें कहा है कि कर्म करने के लिए प्राणी स्वतंत्र है, लेकिन कर्मफल केवल ईश्वर देता है। तो इस व्यवस्था में परीक्षा आदि का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता । क्योंकि प्राणी दुःखी है तो अपने पिछले अथवा वर्तमान जन्म के किए कर्मों के फल भोगने के कारण से है, न कि ईश्वर की परीक्षा से। वेदों का मनन न होने के कारण ही यह मिथ्यावाद, अंधविश्वास, आडम्बर एवं थोथे कर्मकाण्ड फैलते जा रहे हैं । मिथ्यावादी धन लूटने में लगे हैं एवं जनता दुःखी हो जाती है । जिस तरह वेद में भी कहा कि बिना सूर्य के निकले रात्रि का अंधकार नष्ट नहीं हो सकता । देखें तुलसीकृत रामायण दोहा 78(ख)

''राकापति षोड़स उअहिं। तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ''।।

अर्थात् सूर्य के अतिरिक्त दिन निकलने का और कोई विकल्प नहीं है, उसी प्रकार ईश्वर कहता है कि वेद के ज्ञाता विद्वानों से वेद—विद्या को सुने बिना अज्ञान रुपी अँधेरे का नाश नहीं हो सकता । अतः हम वेद—विद्या के साथ—साथ ही गीता, रामायण आदि ग्रन्थों को वेद के विद्वानों से सुनें। इस

प्रकार ग्रन्थों को विद्वानों से सुनने का विशेष कारण वही ग्रंथ बता रहे हैं जैसा कि वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीकृत रामायण में मुख्य विषय वेद ही हैं। परन्तु विरला ही कोई इन ग्रन्थों से वेद विद्या का प्रचार कर सकता है। लेख बड़ा होने के भय से छोटे से उदाहरण में ही आप देखें–तुलसी कहते हैं–

'श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक ।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ।।"

(दोहा 100 (ख))

श्रुति सम्मत अर्थात् वेदों के अनुसार बताई ईश्वर भक्ति मार्ग जो वैराग्य एवं विवेक से परिपूर्ण है,

ऐसे सनातन मार्ग पर मोह में फँसा प्राणी नहीं चलता और विपरीत में स्वयं के बनाए मत–मतान्तरों की कल्पना करता है ।

वाल्मीकि रामायण के प्रथम श्लोक में कहा–

"तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ।।"

अर्थः–

तप और स्वाध्याय में निरत, वक्ताओं में चतुर एवं मुनियों में श्रेष्ठ नारद जी से तपस्वी वाल्मीकि मुनि ने पूछा–

भावार्थः–

इस श्लोक से नारद ऋषि के स्वाध्याय एवं तप का आभास होता है। छान्दोग्योपनिषद् 7/1/2 में इनके स्वाध्याय का वर्णन है कि ऋषि नारद ने कहा–मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद चारों वेदों को जानता हूं। इनके अतिरिक्त इतिहास–पुराण (ब्राह्मण तथा कल्पादि) वेदों का वेद=व्याकरण तथा निरूक्त, पित्र्य=वायु–विज्ञान, राशि=गणितविद्या, दैव=प्रकृति विज्ञान, निधि=भूगर्भविद्या, वाकोवाक्य=तर्कशास्त्र, एकायन=ब्रह्मविज्ञान, इन्द्रिय–विज्ञान, भक्ति शास्त्र, पञ्चभूत ज्ञान, धनुर्वेद, ज्योतिषशास्त्र, सर्प विज्ञान, देवजन–विज्ञान=सर्पों को वश में करने वाली=गन्धर्व–विद्या को मैं जानता हूँ, इतना मैंने अध्ययन किया है। यह है महर्षि नारद का अद्भूत स्वाध्याय।

तो वाल्मीकि रामायण के कहे प्रथम श्लोक में जब नारद ऋषि को

'वाग् विदाम् वरम्' अर्थात् वाणी को सोच–समझकर मधुरता सहित बोलने में प्रवीण कहा है, तब ऐसे स्वाध्यायशील ऋषि किस प्रकार देवताओं और असुरों की चुगली करते रहे और वह महान पुरुष कैसे हँसी–मजाक कर सकता है । तो यह सब गहन विचारणीय विषय हैं ।

ऊपर कहे गए ईश्वर के गुण, कर्म एवं स्वभाव से विपरीत कोई अन्य ईश्वर स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि अप्रमाणिक फलस्वरुप असत्य होगा तथा उसकी भक्ति से सदा दुःख प्राप्त होगा । इसलिए योग शास्त्र एवं सांख्य शास्त्र ने मुख्यतः चार प्रमाण कहे हैं जिसके आधार पर सत्य वा असत्य का निर्णय होता है । योग शास्त्र में इसे इस प्रकार कहा–

'प्रत्यक्षानुमानाऽगमाः प्रमाणानि' (1/7)

(प्रत्यक्ष–अनुमान–आगमाः) प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम, ये तीन प्रकार की (प्रमाणानि) प्रमाण वृत्ति है।

भावार्थः–योग शास्त्र सूत्र 1/6 में कही पांच वृत्तियों में पहली प्रमाण वृत्ति है। प्रमाण वृत्ति भी तीन प्रकार की कही गई है।

1. प्रत्यक्ष प्रमाण–चक्षु आदि इन्द्रिय बाहरी रुप, रस आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त करके चित्त को देती है। इन्द्रियों द्वारा दिए उस ज्ञान को धारण करने वाली चित्त की मुख्य वृत्ति को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। भाव यह है कि चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा जो बाहरी विषयों से सम्पर्क होकर सत्य ज्ञान होता है, उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

जैसे आँख की इन्द्रि ने बाहर पड़े फल से सम्पर्क किया अर्थात् आम के फल को देखा। अब यह आम के ज्ञान का संस्कार चित्त पर पड़ा। अब चित्त की वृत्ति ने यह निश्चय किया कि यह सचमुच में ही आम का फल है। इसे ही प्रत्यक्ष प्रमाण वाली वृत्ति कहते हैं। ऐसे ही अन्य इन्द्रिय नासिका इत्यादि के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष–प्रमाण वृत्ति को जानिए। इसमें भ्रांति भी होती है जैसे दूर से कुछ अँधेरे एवं कुछ उजाले में रस्सी पड़ी है और दूर से देखने से सन्देह हुआ कि वह साँप है। परन्तु पास जाकर देखा तो सन्देह दूर हो गया और प्रधान वृत्ति ने यह सत्य ज्ञान प्रकट किया कि यह सांप नहीं रस्सी है। इसे ही प्रत्यक्ष प्रमाण वृत्ति कहते हैं। अब इसी प्रमाण वृत्ति द्वारा जब हम प्रत्यक्ष में प्राणियों के जन्म मरण देखते हैं और संसार के घोर दुःखों इत्यादि को देखकर वैराग्यवान होकर ईश्वर–भक्ति, यज्ञ तथा योगाभ्यास इत्यादि से

जुड़ जाते हैं, तब यह प्रत्यक्ष प्रमाण वृत्ति अक्लिष्ट अर्थात् क्लेशों का नाश करने वाली कहलाती है। परन्तु जब संसार को देखकर इसकी चमक–दमक में तथा मोह ममता आदि सांसारिक विषयों में फॅस जाते हैं तब यह क्लिष्ट अर्थात् क्लेश देने वाली प्रत्यक्ष प्रमाण वृत्ति कहलाती है।

2. **अनुमान–प्रमाण**–किसी अप्रत्यक्ष वस्तु के चिन्ह को देखकर, वस्तु के सत्य स्वरुप का ज्ञान धारण करने वाली प्रधान वृत्ति को **'अनुमान'** कहते हैं। अप्रत्यक्ष वस्तु का चक्षु द्वारा देखकर यह ज्ञान अनुमान पर आधारित है। अतः यह अनुमान प्रमाण वृत्ति है । जैसे कहीं दूर आकाश में घने धुएँ को देखकर अनुमान लगता है कि वहाँ आग लगी है । इस दशा में प्रत्यक्ष में अग्नि का दर्शन नहीं होता अपितु अग्नि के चिह्न धुएँ को देखकर अग्नि के स्वरुप का अनुमान होता है। दूसरे उदाहरण में जैसे कि रात्रि में बाहर से आए और उस समय वर्षा नहीं थी। प्रातः काल उठ कर बाहर चारों ओर के पानी को देखकर यह अनुमान लगाया कि रात्रि में वर्षा होकर बन्द हो गई है। इसी प्रकार व्यवस्था/नियमानुसार चलते सृष्टि के क्रम में सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जीव–जन्तुओं एवं आकाश आदि को देखकर यह अनुमान होता है कि इनका रचयिता परमेश्वर है, क्योंकि मनुष्य द्वारा इनका निर्माण एवं संचालन सर्वदा असम्भव है। इसे ही अनुमान प्रमाण वृत्ति कहते हैं । ऐसे अनुमान द्वारा प्राप्त ज्ञान को चित्त की संशय रहित **'प्रधान–वृत्ति'** धारण करती है। **'प्रधान–वृत्ति'** शब्द का प्रयोग इस सूत्र की व्याख्या में व्यास मुनि जी ने किया है, जिसका भाव यह है कि कुछ वृत्तियाँ संशय वाली हो सकती हैं, परन्तु संशय रहित सत्य ज्ञान का बोध कराने वाली **'वृत्ति ही प्रधान–वृत्ति'** कहलाती है। जैसे ऊपर कहा है कि दूर से रस्सी को देखकर संशय हुआ कि सम्भवतः वह सर्प है। अतः यह संशय वाली वृत्ति है। जब समीप जाकर देखा कि यह सर्प है तब इस सत्य का ज्ञान कराने वाली वृत्ति **'प्रधान–वृत्ति'** है। जब इस वृत्ति द्वारा यह संसार नाशवान लगने लगता है, और जीव वैराग्यवान होकर वेदाध्ययन, यज्ञ एवं योगाभ्यास आदि में लग जाता है तब यह **'अनुमान–प्रमाण–वृत्ति'** अक्लिष्ट अर्थात् क्लेश न देने वाली वृत्ति कहलाती है। इसके विपरीत जब प्राणी मोह–माया इत्यादि में फँसकर अशुभ एंव वेद–शास्त्र विरुद्ध कर्म करता है तब यह वृत्ति क्लिष्ट अर्थात् क्लेश देने वाली वृत्ति कहलाती है।

3. आगम–प्रमाण–आगम में दो प्रमाण हैं– वेद एवं आप्त पुरुष के उपदेश। आप्त पुरुष मंत्र द्रष्टा व यथार्थ वक्ता होते हैं । अतः वेदों तथा आप्त पुरुषों के उपदेश से जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अर्थ का बोध होता है, वह 'आगम प्रमाण वृत्ति' कहलाती है । व्यासमुनि इस सूत्र की व्याख्या में कहते हैं कि आप्त पुरुष जब स्वंय का देखा एवं अनुमान किया ज्ञान दूसरे पुरुष को शब्दों द्वारा देता है तब सुनने वाले को आप्त पुरुष के शब्दों से जो ज्ञान प्राप्त हुआ, तो उस ज्ञान ग्रहण करने वाली वृत्ति को **'आगम प्रमाण वृत्ति'** कहते हैं। इसके विपरीत यदि उपदेश करने वाला वक्ता वेद–ज्ञान एवं तप द्वारा शब्द, अर्थ और परमेश्वर का साक्षात् दर्शन नहीं कर पाया, तब उसका शब्दों द्वारा दिया ज्ञान अश्रद्धा से पूर्ण मिथ्या–ज्ञान होता है। इस सूत्र की व्याख्या में आगे व्यास मुनि जी कहते हैं कि वेदों का मूल वक्ता स्वयं परमेश्वर है । परमेश्वर कर्म, वासना और मिथ्या ज्ञान से रहित है। अतः परमेश्वर से निकला वेदों का ज्ञान तो सर्वदा स्वतः प्रमाण है और आगम–प्रमाण में आता है । उपर कहा दूसरा आगम प्रमाण आप्त पुरुष का शब्दों द्वारा दिया उपदेश है। परन्तु व्यास मुनि जी यहाँ कहते हैं कि आप्त पुरुष तो वही है जिसने तप, स्वाध्याय एवं योगाभ्यास आदि द्वारा तत्त्व का दर्शन किया हो, निष्पक्ष यथार्थ वक्ता हो, ऐसे आप्त पुरुष, मंत्रद्रष्टा ऋषि के उपदेश को आगम प्रमाण कहते हैं। परमेश्वर और वेद विद्या के साक्षात् दर्शन करने वाले महर्षि व्यास, पताञ्जलि, विश्वामित्र आदि महर्षि भी धर्म और अधर्म की ठीक–ठीक परीक्षा करने वाले धर्मात्मा, यथार्थ–वक्ता, गूढ़ मंत्रों के अर्थों में ज्ञान और विज्ञान को यथावत् जानने वाले तथा सब विद्याओं के ज्ञाता होने के कारण आप्त पुरुष माने जाते हैं। अतः यहाँ यह कहना भी असंगत न होगा कि ऋषियों द्वारा रचित छः शास्त्र भी वेद मूलक होने के कारण सत्य ग्रन्थ है एवं परतः प्रमाण में आते हैं। वर्तमान में भी जो जो पदार्थ, विद्या, कर्म इत्यादि आगम प्रमाण के अन्तर्गत हैं, वही सत्य है। आगम प्रमाण के उपदेशों द्वारा जब जीव वैराग्यवान होकर सत्य–पथ पर चलता है तो यही आगम प्रमाण वृत्ति अक्लिष्ट अर्थात् क्लेश न देने वाली वृत्ति कहलाती है। इसके विपरीत वाली वृत्ति को क्लिष्ट अर्थात् क्लेश देने वाली वृति कहा है।यह प्रमाण वृत्ति जो तीन प्रकार की कही है उसका वर्णन किया गया। और सांख्य मुनि ने कहा –

'न कल्पना विरोधः प्रमाणदृष्टस्य'

(सां॰शा॰ सूत्र 2/25)

अर्थात् जो वस्तु प्रमाण द्वारा सिद्ध है उसका केवल कल्पना के आधार पर विरोध नहीं किया जा सकता। अतः वेद एवं वेद में वर्णित योग–विद्या, शास्त्र, उपनिषद्, गीता, रामायण इत्यादि सदग्रन्थों के प्रमाण से सत्य सिद्ध है। फिर ऋषियों मुनियों एवं स्वयं श्री राम एवं योगेश्वर श्री कृष्ण एवं उस समय की सब प्रजाओं ने इस विद्या को जीवन में उतारा था । अतः सृष्टि में मानव द्वारा इसका विरोध केवल कल्पना के आधार पर किसी भी प्रकार संभव नहीं क्योंकि जो भी वेद या योग–विद्या का विरोध करेंगे, वो अपनी स्वयं की कल्पना के आधार पर करेंगे। वेद, शास्त्र, उपनिषद, गीता, रामायण, ग्रन्थ, इत्यादि के आधार पर कोई भी विरोध नहीं कर पाएगा।

इस ईश्वर के बारे में वेदों ने स्वयं कहा है कि यह केवल एक है तथा यजुर्वेद मंत्र 27/36 में **'न जातः न जनिष्यते'** अर्थात् इसके समान अनन्त गुणों वाला कोई दूसरा ईश्वर न पैदा हुआ है और न पैदा होगा। श्वेताश्वतरोपनिषद् के ऋषि ने श्लोक 6/8 में स्पष्ट कहा है कि –**'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते.........'**। अर्थात् वह ईश्वर स्वयंभू है, उसे किसी ने नहीं बनाया और न तो उसके समान और न ही उससे कोई अधिक सामर्थ्य वाला कभी हो सकता है। अर्थात् न तो ईश्वर के समान और उससे अधिक कोई हुआ है और न होगा। हम इसी एक ईश्वर की पूजा वेदों में कहे यज्ञ एवं योगाभ्यास आदि शुभ कर्मों द्वारा करें।

मनुष्य विद्वान बने, असुर नहीं

"असुर्य्या नाम ते लोकाऽअन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।"

यह यजुर्वेद अध्याय चालीस का तीसरा मंत्र है। इसमें कहा– **'ये आत्महनःजनाः'** जो मनुष्य आत्मा की हत्या करने वाले हैं **'अन्धेन तमसा आवृताः'** और जो मनुष्य अज्ञान रुपी अँधकार से पूर्णतः ढके हुए हैं 'ते असुर्य्या नाम' वह देखने में मनुष्य हैं परन्तु अविद्याग्रस्त फलस्वरुप खाना, सोना, भययुक्त होना एवं विषय–विकार युक्त होकर वेद–विरुद्ध पाप कर्म में लिप्त होने के कारण असुर अर्थात् राक्षस योनि में गिने जाते हैं । और ऐसे असुर **'प्रेत्यापि तान् गच्छन्ति'** जीवित रहते हुए भी अंधकार युक्त अज्ञान में डूबे दुःखों को भोगते हैं और मरकर भी दूसरे जन्म में दुःखों को भोगते हैं। अन्यत्र भी यजुर्वेद में कहा **"ततो मनुष्या अजायन्त"** अर्थात् परमेश्वर ने सृष्टि रचने के आरम्भ में अनेक मनुष्य उत्पन्न किए । इस प्रकार मनुष्य की वेदों ने देव (आर्य) एवं असुर, कर्मानुसार दो योनियां कही हैं अर्थात् जन्म तो मनुष्य का ही होता है । परन्तु कर्मानुसार प्राणी देव अथवा असुर कहलाता है । मनुष्य का शरीर पाकर जब मनुष्य वेदाध्ययन, यज्ञ, ब्रह्मचर्य एवं पुरुषार्थ द्वारा योगाभ्यास आदि शुभ कर्म एवं गृहस्थ आदि के कर्त्तव्य कर्म करता है, उन्हें वेदों ने आर्य, विद्वान, अथवा देव कहा है । देखें ऋग्वेद मंत्र 1/51/8–

"वि जानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ।।"

अर्थात् हे प्राणी तू सुख के लिए **'आर्य्यान् वि जानीहि,** आर्य पुरुष को जान एवं **'ये दस्यवः'** और जो दस्यु हैं

अर्थात् ऐसे दुष्ट जो दूसरों को दुःख देने वाले, वेद–विरोधी कर्म करने वाले अधर्मी हैं उनको जान। मंत्र से स्पष्ट है कि वेदानुकूल शुभ कर्म करने

वालों को आर्य एवं वेद–विरुद्ध अशुभ कर्म करने वालों को दस्यु अर्थात् असुर–राक्षस कहते हैं । इस प्रकार पृथ्वी पर ब्रह्मा के पुत्र विराट, विराट के पुत्र मनु एवं मनु के मरीची इत्यादि पुत्र और उसके पश्चात् इक्ष्वाकु राजा और इक्ष्वाकु वंश में ही हरिश्चन्द्र, दशरथ, राम आदि असंख्य, वेदों को जानने वाले आर्य राजा और उनकी प्रजा हुई है। एवं अत्रि, पताञ्जलि, गुरु वसिष्ठ, संदीपन, कपिल मुनि एवं व्यास आदि अनेक मंत्र द्रष्टा एवं योगी हुए और इनका जब–जब बल, बुद्धि, धन बढ़ता गया तब–तब समाज का कल्याण हुआ। और विपरीत में हिरण्याक्ष, रावण, दुर्योधन एवं कंस आदि तथा उनके असंख्य समर्थक मनुष्य जन्म पाकर भी अधर्मयुक्त कर्म करने के कारण असुर कहलाए। और इस प्रकार देव और असुरों का संग्राम जग–प्रसिद्ध है। असुरों का बल, धन और छल जब–जब बढ़ा तब–तब इन्होंने मानव–जाति को नष्ट किया एवं दुःख पहुँचाया । अतः वेद कहता है कि हम विद्वानों और दुष्टों में पूर्णतः अन्तर जानकर विद्वानों का सगं करें एवं दुष्टों का त्याग करें। ऋग्वेद स्पष्ट कहता है एवं आज भी हम अनुभव करते हैं कि सत्यवादी वेद–विद्या के आचरण से युक्त विद्वान में जब बल, बुद्धि, धन इत्यादि बढ़ता है तो वह मानव समाज को सुख देता है एवं जब दुष्टों में–असुरों में बल, भ्रष्ट बुद्धि एवं धन इत्यादि बढ़ता है तब–तब मानव समाज को दुःख प्राप्त होता है । अतः यजुर्वेद मंत्र 10/22 में कहा कि हे राजन! तू **'देव वज्रहस्त'** अर्थात् वेद–विद्या का ज्ञाता तथा दुष्टों को दण्ड देने वाला हो। **'ते अयुक्तासः मा च ते अब्रह्मता'** तू अधर्मयुक्त न हो और वेद एवं ईश्वर पर तेरी श्रद्धा कम न हो । इन मन्त्रों का भाव यह है कि राजा सहित प्रजा विद्वानों को सुख प्रदान करे और दुष्टों के बल एवं धन को नष्ट करे। तभी मानव समाज में सुख शांति की वृद्धि होती है। भारतीय संस्कृति में इसके उदाहरण सृष्टि के प्रथम राजा मनु एवं इक्ष्वाकु वंश में हरिश्चन्द्र, भरत, अज, दशरथ, श्री राम एवं अनेक ऋषि–मुनि हुए हैं जिन्होंने मनुष्य जाति की ही नहीं, पशु–पक्षी एवं वनों तक की रक्षा करके यज्ञादि शुभ कर्मों द्वारा पृथ्वी पर स्वर्ग उतार दिया था। अतः जब प्राणी श्रेष्ठ मार्ग पर चलता है तब वह देव और जब संस्कृति के विरुद्ध अनैतिक कर्म करता है तब स्वयं वेदों ने उसे असुर योनि में ला खड़ा किया है । चारों वेदों के ज्ञाता मनु भगवान आदि सृष्टि के प्रथम राजा हुए हैं । उन्होंने मनुस्मृति श्लोक

1/141, 2/22, 1/136, 2/17 में प्रमाण दिया है कि प्रथम मनुष्य जाति हिमालय के किसी प्रांत **'त्रिविष्टप'** में उत्पन्न हुई जहाँ से आर्य लोग सीधे वर्तमान भारतवर्ष जहाँ जंगल ही जंगल थे, वहाँ आकर बस गए। अतः हम भारतीय ईरान अथवा कहीं बाहर से आकर यहां नहीं बसे थे। यह नियम है कि जब तक किसी के द्वारा दूसरे को ज्ञान नहीं दिया जाएगा तब तक किसी को भी ज्ञान नहीं हो सकता। आदि में उत्पन्न मानव भी पूर्णतः अज्ञानी था। तब कौन किसको ज्ञान दे सकता था? ऋग्वेद मण्डल 10 में सृष्टि एवं वेद–ज्ञान को स्वयं ईश्वर ने मानव कल्याणार्थ प्रगट किया और यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। अतः योगशास्त्र सूत्र 1/26 में भी कहा–**"स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"** वह परमात्मा ही हमारे आदिकाल के पूर्वजों का प्रथम गुरु है। परमेश्वर ने आदिकाल के चार ऋषि अंगिरा, आदित्य, अग्नि, वायु के हृदय में चारों वेदों का ज्ञान उत्पन्न किया, जिसने उन्हें वेद–विद्या दान में दी। यह वेद–विद्या ही सनातन भारतीय संस्कृति है। सनातन भारतीय संस्कृति कहने का केवल इतना ही तात्पर्य है कि आज से करीब सवा पांच हजार वर्ष पहले महाभारत काल में वर्णित अन्तिम राजा अर्जुन के पौत्र परिक्षित और उससे भी कई वर्षों आगे तक पृथ्वी का केवल एक ही चक्रवर्ती राजा सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करता था। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी पर भारत वर्ष का साम्राज्य था एवं सम्पूर्ण सृष्टि पर चारों वेदों की विद्या ही आचरण में थी अन्य कोई शास्त्र अथवा आज के मजहब उस समय उदय नहीं हुए थे। अतः वेद–शास्त्र, उपनिषद् एवं गीता आदि ये पुरातन ग्रन्थ सम्पूर्ण पृथ्वी की निधि थी। फलस्वरुप इस निधि को भारतीय संस्कृति कहा जाता है। अर्थात् यह संस्कृति आज भी सम्पूर्ण मानव जाति पर उसी प्रकार लागू होती है जैसे पूर्वकाल में सब मनुष्यों पर लागू थी। उस समय आज के मजहब नहीं थे। अतः यह संस्कृति मजहब नहीं है। परन्तु दुर्भाग्यवश कई वेद–विरोधी तत्त्वों ने आज यह घोषणा कर दी है कि वेद शास्त्र आदि ग्रन्थ केवल हिन्दुओं के लिए हैं। वस्तुतः यह वैदिक सनातन संस्कृति हमारी आत्मा है जिसके अभाव में आत्मिक ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है । जैसे आत्मा रहित शरीर मृत्यु को प्राप्त हो दुर्गन्ध देने लगता है उसी प्रकार आज वैदिक संस्कृति के बिना देश तहस–नहस हो चुका है । केवल इसी संस्कृति के बल पर पिछले

तीन युगों की जनता विद्वानों की कृपा से सुख–सम्पन्न थी । मनुस्मृति 1/108 में कहा–

''**आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मृति एव च**''

अर्थात् श्रुति(वेद) एवं स्मृति द्वारा कहा ज्ञान एवं उस पर आचरण ही प्रमाणिक श्रेष्ठ धर्म है। इनके विरुद्ध कर्म करना पूर्णतः अधर्म कहा है। आज जब हम श्रीराम, श्रीकृष्ण, जनक राजा, हरिश्चन्द्र व दशरथ एवं उनकी जनता के सुख की गाथा गाते हैं, तब हम प्रायः भूल जातें हैं कि ये विभूतियाँ प्राचीन वैदिक शिक्षा पद्धति जिसकी शिक्षा पूर्व के ऋषियों द्वारा गुरुकुलों में दी जाती थी, उन गुरुकुलों की देन है । सामवेद मंत्र 1298 एवं 1299 तथा ऋग्वेद 9/67/31,32 का भाव है कि ''**यः पावमानीः अध्येति**''

अर्थात् जो ईश्वर की पवित्र वेदवाणी का अध्ययन करता है एवं ''**ऋषिभिः रसम् पावमानीः अध्येति**'' अर्थात् ऋषियों के हृदय में प्रकट वेद विद्या के ब्रह्म–रस का अध्ययन करता है वह मनुष्य 'रसम! अश्नाति' ब्रह्मानन्द को प्राप्त करता है। यजुर्वेद मंत्र 8/9 का भी यही भाव है कि पति–पत्नी दोनों वेद–विद्या के ज्ञाता हों एवं वेदानुकूल शुभ कर्म करते हुए अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को सिद्ध करें। इस विद्या को प्राप्त करना ही मानव का धर्म है । ऋग्वेद 8/100/12 में मानो जीवात्मा अपने शरीर से कह रही है कि हे मित्र! विद्या–विज्ञान द्वारा हम दुःखों एवं विघ्नों को नष्ट करके मुक्त होकर वेदों में ईश्वर की दी हुई प्रेरणा में चलें । मनुष्य शरीर दुखों को नष्ट करके मोक्ष सुख प्राप्ति के लिए मिला है । अतः वेद–विद्या को सुनना, यज्ञ एवं योगाभ्यास आदि विद्या को प्राप्त करना ये प्रत्येक ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास सबका धर्म है । सन्यासी अवश्य अग्निहोत्र को त्याग कर बदले में सम्पूर्ण मानव जाति को वेद–विद्या का दान करता है। इन सबके लिए पिछले युगों में गुरुकुल में ही शिक्षा पद्धति की व्यवस्था द्वारा मनुष्य के जीवन का सुन्दर निर्माण होता था। जबकि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में किशारों–विद्यार्थियों को पूर्णतः प्राचीन गुरुकुल शिक्षा पद्धति से अलग करके उन्हें प्रायः आचारहीन बना दिया है। अच्छे आचरण को सदाचार एवं बुरे आचारण को दुराचार कहते हैं। सदाचार वेदों में वर्णित शुभ कर्म हैं। मनु स्मृति श्लोक 1/109 में कहा–''**आचारात् विच्युतः विप्रः**''जो धर्माचरण से रहित द्विज हैं वह ''**वेदफलम् न अश्नुते**'' वेदाध्ययन का फल जो परम

सुख है उसे प्राप्त नहीं करता । अर्थात् आचार से जो हीन मनुष्य है उन्हें **''वेदाः न पुनन्ति''** वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। अतः वेद-विद्या का जीवन में महत्त्व तभी है जब हम उसे आचरण में लाएं। राष्ट्र की प्रगति के लिए विद्यार्थियों में सदाचार, धर्म, नैतिकता, चरित्र एवं शील आदि गुण अनिवार्य हैं, जिसके अभाव में उनकी शारीरिक एवं मानसिक दोनों शक्तियों का ह्रास हुआ है। फलस्वरुप विद्यार्थी में पुरुषार्थ, उत्साह, विवेक, मानवीय भावना, माता-पिता, गुरुजनों की सेवा, प्रातःकाल उठकर योगाभ्यास, व्यायाम,सामाजिक, राष्ट्रीय एवं धार्मिक भावना लुप्त प्रायः हो गई है। जिसका स्थान अधिकतर हड़ताल, तोड़-फोड़, किशोरावस्था में मदकारी दुर्व्यसन, अनुशासनहीनता, चरित्र-हीनता निन्दनीय कर्मों में नेतागिरी, फिल्म, टी.वी. (दूरदर्शन) इत्यादि का शौक आज के विद्यार्थी की शान बन गए हैं, चाहे माता-पिता-सम्बन्धी समाज वा देश इन कार्यों से दुःखी हो, समाज में भ्रष्टाचार फैले अथवा राष्ट्र-निमार्ण उत्थान रुकं जाए। जहाँ पुरातन गुरुकुल प्रणाली में अध्यात्मवाद का विशेष स्थान था, वह आज शून्य प्रायः है। आध्यात्मिक विजय ही स्थायी विजय है। सदाचार एवं शील के अभाव में शान्ति असम्भव है । केवल विज्ञान की उन्नति, सुख के साथ दुःख का कारण है। हमारा देश धर्म एवं अध्यात्म का स्त्रोत रहा है। आधुनिक अनात्मवादी शिक्षा असभ्यता, हुड़दंग, अनाचार, शारीरिक प्रदर्शन, हिप्पीवाद, शोरगुल एवं भौतिकवाद की चमक-दमक बनकर रह गई है। ऐसे वातावरण में अभी भी वेद शास्त्र के प्रति हमारा लगाव पूर्व के ऋषियों की ही देन है। पुनः **'सत्यमेव जयते'** के अनुसार सदा सत्य बोला जा सकता है किन्तु झूठ सदा बोला नहीं जा सकता। जीवन में अहिंसा सदा निभाई जा सकती है परन्तु हिंसा का एक दिन नष्ट होना तय है। धर्मयुक्त पुण्य कर्म हमेशा किए जा सकते हैं परन्तु पाप हमेशा नहीं किए जा सकते। जब पाप की अति होगी, पाप का घड़ा भरेगा, तब नाश निश्चित है। अतः वेदों मे कहे शुभ कर्मों का आचरण ही सनातन धर्म है जिसका ज्ञान प्रत्येक सृष्टि रचना के आरम्भ में हमें ईश्वर वेदों द्वारा कराता है। पाप कर्म प्रकृति के तीनों गुणों के प्रभाव से हमारे ऊपर, बीच में हावी हो जाते हैं। यह क्षणिक सुख है जिसे हम सत्य एवं असत्य के निर्णय द्वारा विवेक बुद्धि से नष्ट कर सकते हैं। यह शिक्षा सनातन गुरुकुल प्रणाली में किशोरों को दी जाती थी। अतः गुरुकुल

से प्राप्त वैदिक शिक्षा–"**सत्यं वद, धर्मं चर**" इत्यादि जिसमें सदा सत्य बोलना, धर्म के रहस्य को जानकर उस पर आचरण करना, स्वाध्याय में आलस्य न करना, माता–पिता, गुरुजनों, वृद्धों की सेवा, सत्य, अहिंसा, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य द्वारा इन्द्रिय संयम, मेहनत की कमाई में ही सन्तुष्ट होना, मन–तन दोनों को पवित्र रखना, वेदाध्ययन, यज्ञ, योगाभ्यास, शील स्वभाव इत्यादि भौतिक (विज्ञान) एवं आध्यात्मिक दोनों में साथ–साथ उन्नति करना, आदि गुण थे। इस प्रणाली में कहा–

'सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।"

अर्थात् विद्यार्थी को सुख कहाँ? सुख चाहने वाले को विद्या प्राप्ति सम्भव नहीं। इन्द्रिय–सुख चाहने वाला विद्या छोड़ दे एवं विद्या चाहने वाला इन्द्रिय–सुखों को छोड़ दे। इस पुरातन पद्धति में किशोर–किशोरियों को विद्या प्राप्ति के आधार, ब्रह्मचर्य–इन्द्रिय–संयम की सर्वप्रथम शिक्षा दी जाती थी। वहाँ आज के अधिकतर किशोर तो शायद इस वैदिक 'ब्रह्मचर्य' शब्द के ठीक–ठीक अर्थ भी नहीं जानते होंगे जिसके अभाव में मुख्यतः शोरगुल, फिल्मी गाने, टी.वी देखने मे रत, फबतियाँ कसने, गन्दे हँसी–मज़ाक–चुटकले, पुरुषार्थ से दिल चुराना, देर तक सोना, व्यर्थ घूमना–फिरना, कटुभाषा, गाली–गलोच, इत्यादि अनेक व्यसन उन पर हावी हो गए हैं। पूर्व के ऋषियों ने वैदिक परम्परा में जीवन को चार आश्रमों में बाँटा है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास। यह चार आश्रम पिछले तीन युगों में भारतीय संस्कृति के प्राण कहे गए हैं। पहला ब्रह्मचर्य आश्रम अन्य तीन आश्रमों का आधार (नींव) है। किसी मकान की नींव पक्की है तो उस मकान के गिरने का कोई भय नहीं। कच्ची नींव के मकान ही आँधी–तूफान, बरसात में गिर जाते हैं। इसी प्रकार यदि प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम दृढ़ है तो शेष तीन आश्रम सदा फलते–फूलते, सुख सम्पन्न एवं दीर्घायु इत्यादि अनेक गुण सम्पन्न होते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम के ध्वस्त होते ही शेष तीनों आश्रम भी ध्वस्त हो जाते हैं। फिर तो प्रत्येक आश्रम में बीमारियाँ, परेशानी, अकाल मृत्यु इत्यादि अनेक बुराइयाँ जन्म ले लेती हैं। प्रत्येक आश्रम की आयु 25 वर्ष निर्धारित है। अतः प्रथम 25 वर्ष तक की किशोरावस्था विद्या, सुशिक्षा लेने तथा इन्द्रियों एवं शरीर को बलवान बनाने के लिए है। इसी अर्जित शक्ति का

सदुपयोग शेष तीन आश्रमों में होता था। यजुर्वेद मंत्र 1/4 का भाव है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में पूर्ण–विद्या एवं पूर्ण–आयु प्राप्त करने के लिए शिक्षा युक्त वाणी सेवन की जाती है, जिसका नाम इस मंत्र में **"विश्वायु"** कहा है। महाभारत के अनुशासन पर्व अध्याय 25 श्लोक 6 एवं 7 में कहा कि धर्म का रहस्य सुनना वेदों में कहे व्रत का पालन करना, यज्ञ और गुरु सेवा करना, यह ब्रह्मचर्य आश्रम का धर्म है। भिक्षा मांगना, यज्ञोपवीत धारण करना, प्रतिदिन वेदों का स्वाध्याय करना, यह परम धर्म है। एक बार महर्षि धन्वान्तरि के शिष्य ने पूछा कि हे ऋषिवर प्रत्येक प्रकार के रोग को नाश करने वाला उपचार क्या है? तब ऋषि ने उत्तर दिया–ब्रह्मचर्य रुपी महारत्न, मृत्युरोग, बुढ़ापे, व्याधि सबको नाश करने वाली औषधि है। प्राचीन गुरुकुल प्रणाली ने मनुष्य को विद्वान, देव बनाकर सुख सम्पदा युक्त करके मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए जीवन में सोलह शुभ संस्कारों का अलौकिक ज्ञान दिया था, जिसे आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने जड़ से समाप्त कर दिया है। इनका स्थान आज अधिकतर आडम्बर, अंधविश्वास पर आधारित पूजा पाठ ने ले लिया है। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण ,अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध इन सब संस्कारों के पश्चात् किशोर–किशोरी का पाँचवे, छठे अथवा आठवें वर्ष में उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार का समय आता है। यहीं से गुरुकुल प्रणाली की वैदिक शिक्षा प्रारम्भ होती थी। गुरुकुल आश्रम में विद्यार्थी प्रवेश करता था जहाँ उसे आश्रम का अर्थ, श्रम एवं केवल श्रम करना, आलस्य रहित हो जाने की शिक्षा दी जाती थी। लेख बड़ा होने के भय से प्रत्येक संस्कार का विवरण यहां नहीं दिया जा रहा। केवल उपनयन संस्कार पर ही थोड़ी सी व्याख्या की जाएगी। वेद मन्दिर योल में आधुनिक पीढ़ी के अनेक किशोर–किशोरियों के समय–2 पर यह सब संस्कार होते रहते हैं। जिनके प्रभाव से दो तीन वर्ष की आयु से ही बच्चे मुँह–जुबानी वेदमन्त्र उच्चारण करने लगते हैं। संस्कार का अर्थ है कि जैसे किशोर पाठशाला में पैंसिल से सफेद कागज पर कुछ लिखता है और कहीं पर गलत लिखे को रबर से मिटाकर उसी स्थान पर दुबारा ठीक शब्द लिख देता है। इसी प्रकार पूर्व जन्म के कर्मों के संस्कार चित्त पर बने होते हैं, वह चित्त कागज की तरह समझो। वेदमन्त्रों द्वारा किया संस्कार ऐसे पूर्व जन्म के संस्कारों को जो

भविष्य में दुःख का कारण बनते हैं, उनको मिटाकर वहाँ वर्तमान के शुभ पुण्यवान फलस्वरुप सुखदायक संस्कार बना देते हैं। यहीं से बच्चे का सुन्दर भविष्य निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। इसमें दीर्घायु, दुःखों का नाश, सुख–सम्पदा, विद्या, तेज ओज, बल एवं अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष प्राप्ति तक के शुभ संस्कार सम्मिलित हैं। आज भारतवर्ष का दुर्भाग्य है कि पुरातन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली जिसमें चरित्र–निर्माण एवं अध्यात्मवाद का विशेष स्थान था, उसके लोप होने से वेदाध्ययन रहित, वैदिक संस्कृति के विरोधी, संत–साधुओं के दुष्प्रचार के कारण भारतवर्ष के किशोर–किशोरियाँ इन अलौकिक आशीर्वादों से वंचित (अलग) हो गए हैं। गुरुकुल में प्रवेश होने पर बालक का उपनयन संस्कार होता था, जिसमें यज्ञोपवीत संस्कार मुख्य है । इसे जनेऊ धारण करना भी कहते हैं। गुरुकुल में प्रवेश होते ही बालक का यज्ञोपवीत/वेदारम्भ संस्कार किया जाता था। यज्ञोपवीत में तीन धागे होते हैं जिसमें गांठ लगाई जाती है, जिसका भाव है प्रकृति के रज, तम एंव सत्व विषय–विकारी गुण हैं, जिनसे शरीर एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बना है। शरीर में बसने वाली चेतन–अमर आत्मा में लगाव करके अपने चेतन शुद्ध स्वरुप को भूल जाती है। गुरुकुल में आयोजित इस संस्कार में बालक पर यज्ञोपवीत में गांठ बांधकर वेदमन्त्रों द्वारा यह संस्कार डाला जाता था कि जब तक मेरी विद्या पूर्ण नहीं होगी, मैं प्रकृति के इन तीन गुणों को बाँधकर डालता हूं। इनमें नहीं फँसूगा। दूसरे तीन प्रभाव ऋषि ऋण, पितृ ऋण एवं देवऋण चुकाने के विषय में है। ब्रह्मचर्य द्वारा ऋषि मुनियों की सेवा करके वेद के अध्ययन में रत एवं शील स्वभाव तथा शारीरिक बल एकत्र करना ,यह यज्ञोपवीत का प्रथम धागा अर्थात् ऋषि–ऋण चुकाना है। ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त करके तथा संपूर्ण विद्या अर्जित करके विद्वान होकर गृहस्थाश्रम में माता–पिता, गुरुजनों की सेवा एवं विवाह संस्कार द्वारा उत्तम, बुद्धिमान संतान समाज को देना, यह दूसरा धागा अर्थात् पितृऋण हुआ । महाकवि कालीदास ने शिव–पार्वती संवाद में बड़ा सुन्दर कहा–**'शरीरमाद्यं खलु धर्मम् साधनम्'** अर्थात् मानव शरीर की प्राप्ति निश्चित रुप से केवल धर्म की साधना का साधन है। महाभारत में कहे अनुसार जानवरों की तरह पेट भरना, सो जाना, मृत्यु आदि अनेक भय से पीड़ित होना वा भोग विलास द्वारा केवल संतान प्राप्त करना ही मानव शरीर का कार्य नहीं है । इसी वैदिक

पद्धति में गृहस्थाश्रम में पितृ ऋण चुकाकर अंत में वेद में कहे 'मा गृधः' अर्थात् लोभ–मोह छोड़कर परोपकार के लिए गृहस्थाश्रम का त्याग करके समाज को स्वंय अर्जित विद्या का दान करना। यह धागे का तीसरा कर्त्तव्य देव–ऋण है। वर्तमान की तरह विद्या ही न अर्जित करना अपितु कुछ सुन–पढ़, रट कर स्वयंभू साधु, संत बन जाना आज प्रायः सुख, ऐश्वर्य, विकार, अधर्म, गुरुकुल परम्पराओं को तोडने वाले पाप का प्रत्यक्ष प्रमाण है। जहां पहले विद्वान को परखने के लिए शास्त्रार्थ, ऋषि याज्ञवल्कय एवं राजा जनक की आचार्या बाल ब्रह्मचारिणी गार्गी जैसे संवाद प्रसिद्ध हैं वहाँ भारतीय कानून के **'धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र'** जैसे शब्दों ने परम्पराओं को पूर्ण विराम देकर नष्ट ही कर दिया है। आज मूर्खों का सम्मान और विद्वानों का अनादर समाज में प्रत्यक्ष में नजर आता है। इसी विशेष कारण द्वारा आज समाज दूषित हुआ है। जब वेद विद्या का प्रकाश ही नहीं होगा तब अज्ञान रुपी अन्धकार का नाश असम्भव है। यज्ञोपवीत संस्कार तक बालक, कन्या में ब्रह्मचर्य, धर्म, सत्यवादन, कठोर परिश्रम, मानसिक एवं शारीरिक विकास एवं चरित्र निर्माण द्वारा इतने गुण भर जाते थे कि वर्तमान में इन गुणों के अलौकिक शब्दों को सुनना भी नसीब नहीं रहा। इसमें बालक विद्या प्राप्ति के निमित यज्ञ आरम्भ होने से पहले ऋषि संदीपन एवं वशिष्ठ मुनि जैसे आचार्य जिनके आचरण में चारों वेदों की विद्या होती थी उनके पास जाकर विद्यार्थी पहला वाक्य कहता है–

''ब्रह्मचर्यमागाम् ब्रह्मचार्यसानि''

अर्थात् हे आचार्य मैं आपके पास ब्रह्मचर्य धारण करने आया हूँ। मैं आपका ब्रह्मचारी बनूँ। पुनः यज्ञोपवीत धारण कर तथा वेद मन्त्रों से यज्ञ करते हुए यजुर्वेद मंत्र 1/5 के अनुसार बालक व्रत लेता है कि वह सत्य विद्या को आचरण में लाएगा और झूठ का त्याग करके सत्य को ही प्राप्त होगा। प्राचीन गुरुकुल पद्धति पूर्णतः वेद–विद्या पर आधारित थी। अतः ऊपर ब्रह्मचर्य आदि की शिक्षा का यजुर्वेद मंत्र 19/30 में कहा ज्ञान है कि **'व्रतेन दीक्षाम् आप्नोति,'** यहाँ व्रत का अर्थ है, ब्रह्मचर्य एवं सत्य–भाषण आदि नियम प्राप्त करना और जो बालक अथवा कन्या इस प्रकार ब्रह्मचर्य, विद्या, सुशिक्षा प्राप्त करता है और उस शिक्षा से **'दक्षिणाम् आप्नोति'** अपना यश एवं धन इत्यादि प्राप्त करता है और उस शिक्षा से दक्षिणा द्वारा

धर्मयुक्त कार्य करके सत्य को धारण करने की इच्छा दृढ़ करता हुआ वह 'सत्यम्' सत्य परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है। इस सनातन परम्परा के विपरीत आज कोई कैसे ब्रह्म प्राप्ति करके गुरु बन जाते हैं, यह विद्वानों के गले में बात उतर नहीं रही। उपनयन संस्कार द्वारा ही बालक **'द्विज'** कहलाता है। **'द्वि'**–दूसरा **'ज'**–जन्म अर्थात् पहला जन्म माता पिता से एवं इस दूसरे जन्म में आचार्य उसका परम–पिता बनता है। इसलिए उसे द्विज कहा जाता है। इस परम्परा में सस्कार द्वारा दीक्षित न होने से मनुस्मृति श्लोक 2/147 ने केवल माता पिता द्वारा जन्म लेकर विषय–विकारी प्रवृति एवं संतान की कामना का फल कहा है, जो धर्मयुक्त नहीं है। वैदिक काल में बालक को शिक्षा का केन्द्र कहा है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली द्वारा बालक पर शुभ संस्कार डालकर उसके पिछले जन्म के कुसंस्कार, माता–पिता के संस्कार और इस जन्म के सस्कारों पर नियंत्रण किया जाता था। गुरु के आश्रम में प्रवेश करके बालक ब्रह्मचर्य द्वारा तप कर द्विज बनता था। आचार्य द्वारा प्राप्त शिक्षा में **'कर्म कुरु' 'दिवा मा स्वाप्सीः' 'क्रोधानृते वर्जय,' 'उपरि शय्या वर्जय'** अर्थात् पुरुषार्थी होकर कर्म करो, दिन में मत सोओ, क्रोध करना वर्जित है, ऊपर शय्या पर सोना वर्जित है। मनुस्मृति श्लोक 2/177 में भी कहा–

''वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिना चैव हिंसनम्।।''

बालक–बालिका, नर–नारी, मांस–मदिरा, जुआ, निंदा, स्त्रियों का अभद्र दर्शन, खुशबू इत्र इत्यादि, माला, रस, स्त्री और पुरुष का संग, खट्टे चटपटे भोजन, प्राणियों की हिंसा छोड देवें। मनु स्मृति 2/178 में कहा–**'कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्'** अर्थात् काम, क्रोध और लोभ तथा अश्लील नाच–गाना, बजाना छोड़ दें, इत्यादि शिक्षाएँ आचरण में लाता था। जबकि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अभाव में बालक जरा–2 सी बात पर माता–पिता, भाई–बहन, अध्यापकों पर क्रोध करते हैं, दिन में खूब सोते हैं। प्रायः पुरुषार्थहीन हैं, सिरदर्द इत्यादि रहता है। आश्रम का भाव ही श्रम करना है, आलस्य एवं पुरुषार्थहीनता नहीं । पूरी शिक्षा समाप्त करने पर पुनः आचार्य गृहस्थाश्रम की आज्ञा देते हुए विद्यार्थी को कहते थे–

"सत्यं वद । धर्म चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम् । मातृ देवो भव । पितृदेवो भव । आचार्य देवो भव अतिथिदेवो भव।एष आदेशः, एष उपदेशः, एषा वेदोपनिषद, एतदनुशासनम्" ।

(तैत्तिरीयोपनिषद प्रपाठ 7 अनु.11 कं 1,2,3,4)

सनातन गुरुकुल पद्धति में आचार्य द्वारा इस वैदिक ज्ञान का बीज बालक के हृदय में डालकर गृहस्थाश्रम में भेजा जाता था और इसी बीज से पेड़ शाखाएं और फूल फूटते थे, जिसकी अमृतमयी खुशबू वह बालक समाज को बांटकर सुदृढ़ राष्ट्र का निमार्ण करता था। शिक्षा शिक्षक पर आधारित है। श्री कृष्ण के आचार्य मुनि संदीपन, जनक आचार्या गार्गी, श्रीराम के गुरु वशिष्ठ मुनि, हरिश्चन्द्र के आचार्य ऋषि विश्वामित्र जैसे वैदिक विद्वानों का वर्तमान में अकाल ही पड़ गया है। शिक्षा का ध्येय उस समय केवल धन प्राप्ति का साधन न होकर, शिक्षा, नैतिक कर्त्तव्य, धर्म, सुदृढ़ राष्ट्र निर्माण तथा मोक्ष प्राप्ति का सौपान थी।

यजुर्वेद मन्त्र 40/14 के आधार पर भौतिक (विज्ञान) एवं आध्यात्मिक दोनों ज्ञान द्वारा मानवीय गुण चरित्र निर्माण इत्यादि गुणों से सम्पन्न थी। शिक्षा जगत का आधार विद्यार्थी है। आज शिक्षक, शिक्षा एवं विद्यार्थी तीनों ही प्रायः धन–उपार्जन की होड़ में मुख्यतः भौतिकवादी बने मानव जीवन के लक्ष्य आध्यात्मिकवाद द्वारा मोक्ष प्राप्त से कट गए हैं । ऐसी भयावह स्थिति को उत्पन्न करने के कारण संदीपन जैसे वेदज्ञ ऋषि एवं दशरथ, हरिश्चंद्र जैसे वेदज्ञ नेताओं की कमी से धर्म, राजनीति एंव वैदिक संस्कृति पर कुठाराघात है। यजुर्वेद मन्त्र 22/22 में सुदृढ़ राष्ट्र की कामना के लिए प्रार्थना है कि हे ईश्वर हमारे राष्ट्र में वेद–विद्या एंव ईश्वर के ज्ञाता विद्वान उत्पन्न हों, शत्रु का नाश करने वाले वीर उत्पन्न हों।

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों क्षेत्रों में उन्नति की द्योतक थी, जिसके अभाव में आज सम्पूर्ण विश्व भौतिक चमक–दमक, भोग–ऐश्वर्य, धन बटोरने की होड़, शस्त्र एकत्र करने की होड़ इत्यादि में फंसकर केवल विज्ञान प्रधान शिक्षा पर ही आश्रित होकर

आत्मिक शान्ति से कोसों दूर चला गया है । सम्पूर्ण देश बुद्धिजीवी एवं जनता को पुनः शान्ति प्राप्ति एवं सुदृढ़ राष्ट्र निर्माण के लिए अध्यात्मवाद पर आधारित पुरातन ऋषिकुल से शोभित गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को विकसित करने में तन, मन, धन एवं प्राण का सहयोग देना होगा । इसी से मानव कल्याण जुड़ा है ।

ईश्वर एवं उसके द्वारा सृष्टि रचना

चारों वेदों के अनेक मन्त्रों में सृष्टि रचना का वर्णन है । यजुर्वेद का सम्पूर्ण अध्याय 31, सामवेद के मन्त्र 617 से 621, ऋग्वेद मन्त्र 10/90/1–13 तथा अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 6 में मूल प्रकृति के रज, तम एवं सत्व, इन तीन गुणों से सम्पूर्ण जड़ जगत की रचना का वर्णन मिलता है । यजुर्वेद मन्त्र 23/1 में कहा कि पिछली सृष्टि प्रलय को प्राप्त होकर नष्ट हो जाती है, तब सब चेतन जीवात्माएँ शरीर रहित, मूर्छित अवस्था में विद्यमान होती हैं और यह सूर्य–चन्द्रमा, पेड़–पौधे एवं मनुष्य तथा पशु–पक्षी के समस्त शरीर भी नष्ट होकर प्रकृति के मूल स्वरुप में समा जाते हैं अर्थात् ऋग्वेद मन्त्र 10/129/1 के अनुसार यह दिखने वाली पृथिवी, शरीर आदि तत्त्व कुछ भी नहीं रहता अर्थात् दिखाई देने योग्य कुछ नहीं होता । अपितु इस समय प्रकृति अपनी मूल अवस्था में होती है अर्थात् रचना करने योग्य नहीं होती। इस मूलावस्था का सुन्दर वर्णन मुनि कपिल ने अपने सांख्य शास्त्र सूत्र 1/26 में कहा–

"सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पन्च तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चिविंशतिर्गणः।।"

अर्थात् सत्व, रजस, तमस् यह तीन गुण प्रकृति के हैं। जब यह तीन तत्त्व पृथिवी के पदार्थ रचने की अवस्था में नहीं होते तो इन तत्त्वों की इस साम्यावस्था का नाम ही प्रकृति है । जब प्रकृति अपने इस मूल स्वरुप में होती है, तब इसे ही प्रलयावस्था कहते हैं जिसके विषय में ऊपर ऋग्वेद मन्त्र में कहा कि इस प्रलयावस्था में देखने योग्य कुछ भी नहीं होता। यजुर्वेद मन्त्र 23/54 एवं ऋग्वेद मन्त्र 10/129/3 में स्पष्ट किया है कि ईश्वर की एक अंश मात्र शक्ति ने इस जड़ प्रकृति से जगत उत्पन्न किया। अर्थात् यजुर्वेद मन्त्र 31/3 के अनुसार यह तीनों लोक अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा

आदि द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथिवीलोक ईश्वर के चतुर्थ अंश के समान भी नहीं हैं। भाव यह है कि ईश्वर सम्पूर्ण जगत में व्यापक है और सूर्य--चन्द्रमा आदि की रचना और सब ग्रहों, अन्तरिक्ष (खाली स्थान) में घूमना, जन्म--मृत्यु आदि का होना इत्यादि ईश्वर के इन आश्चर्ययुक्त कर्मों (ईक्षण) को देखकर यह अनुमान होता है कि ईश्वर कितना महान है। और वास्तव में विद्वान लोग भी यह रचना देखकर दाँतों तले अंगुली दबा लेते हैं और पूर्व एवं वर्तमान के, केवल भौतिकवाद को बढ़ावा देने वाले, वैज्ञानिक भी इस रचना की गहराई तक अभी पहुंच नहीं पाए हैं और न ही पहुंचने की संभावना है। अतः सृष्टि रचना को देखकर, मनन करके, आश्चर्ययुक्त होकर कहना पड़ता है कि ईश्वर अत्याधिक महान, शक्तिमान है। परन्तु प्रस्तुत मन्त्र इससे भी अधिक आश्चर्ययुक्त बात कह रहा है कि यह रचना आदि तो ईश्वर के लिए कुछ भी नहीं है। यह सब ईश्वर के चतुर्थ अंश के समान भी नहीं है। अतः ईश्वर तो इससे भी अधिक महान है। तब यजुर्वेद के मन्त्र 40/4 का भी अनायास ही स्मरण हो जाता है कि इस सर्वशक्तिमान रचनाकार ईश्वर को भुलाकर सूर्य, शरीर, पेड़--पौधे आदि असंख्य पदार्थों के विषय में विज्ञान की मन बुद्धि के चिंतन द्वारा जो खोज हो रही है, वह प्रायः निष्फल ही कही जाएगी क्योंकि प्रस्तुत मन्त्र ईश्वर की शक्ति और पूर्णतः पदार्थों की खोज को केवल मन, बुद्धि द्वारा प्राप्त करने में असफल सिद्ध करता है। क्योंकि मन्त्र कहता है कि ईश्वर और ईश्वर की रचना को **"नैनत् देवाः आप्नुवन्"** अर्थात् मन, बुद्धि अथवा आँख, नाक आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। अतः यजुर्वेद मन्त्र 40/9 ऐसी खोज को अविद्या आदि अंधकार (क्लेश) एवं दुःखों में डूबने का साधन मात्र कहता है और यही कारण है कि आज सम्पूर्ण विश्व में भ्रष्टाचार नारी अपमान, उग्रवाद एवं परमाणु युद्ध आदि खतरों सहित असंख्य विपदाओं की प्रचण्ड आंधी अन्तरिक्ष में उफान लिए खड़ी है और कब तीसरा विश्व युद्ध मानवता के लिए खतरा उत्पन्न कर दे ,इसका कोई पता नहीं। परन्तु वेद में भगवान ऐसी भौतिक उन्नति को नकारता भी नहीं है क्योंकि संसार के इन सब पदार्थों का ज्ञान सर्वप्रथम तो ऋग्वेदादि में स्वयं ईश्वर ने खोज करने एवं मानव कल्याण के लिए ही दिया है और जब-जब इन पदार्थों की (विज्ञान) खोज ईश्वरीय वाणी चारों वेद के अनुसार हमारे पूर्व के व्यास आदि

ऋषियों ने आध्यात्मिकवाद सहित की, तब पिछले तीनों युगों में सदा मानवता का कल्याण ही हुआ था और वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत आदि ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय का विज्ञान, ऋषियों की कृपा से आज से कई गुणा अधिक उन्नत स्तर पर था। उदाहरणार्थ वाल्मीकि रामायण मे देखें कि सुग्रीव ने महाबली, चारों वेदों के ज्ञाता (देखे किष्किन्धा काण्ड, सर्ग 2, श्लोक 28, 29) हनुमान जी को माता सीता की खोज करने लंका में जाने के लिए अपना विमान दिया था । (देखें सुन्दर काण्ड, सर्ग 38 श्लोक 8) इस श्लोक में 'निपपात' शब्द का प्रयोग है अर्थात् हनुमान जी माता सीता की खोज करके वापसी में वृक्षों से परिपूर्ण महेन्द्र पर्वत के ऊपर उतरे जो निश्चित ही जहाज़ से उतरने का संकेत है। यदि समुद्र से तैर कर आते तब पर्वत पर चढ़ने का उल्लेख होता, पर्वत पर उतरने का नहीं। भगवान राम लंका जीतकर, वापिस विभीषण द्वारा दिए अत्याधिक शक्तिशाली विमान द्वारा कुछ ही क्षणों में अयोध्या पहुंच गए थे। उस विमान में हनुमान, सुग्रीव, अंगद, अनेक अति विशिष्ट नेता और न जाने कितने प्रजा के व्यक्ति एक साथ विराजमान थे। अर्थात् विमान पूर्णतः विश्वास योग्य था। (देखें युद्ध काण्ड, सर्ग 67)।

तभी वह ऋषि ही पूर्ण वैज्ञानिक एवं सम्पूर्ण मानवता के हितकारी थे । जैसा कि अथर्ववेद मन्त्र 19/41/1 में कहा कि ऋषियों ने तप किया एवं सुदृढ़ राष्ट्र निर्माण का संकल्प लिया। परन्तु दुर्भाग्यवश वेदविद्या से हीन प्रायः संत एवं नेता मिथ्यावाद, आडम्बर एवं अंधविश्वास फैलाकर, राष्ट्र को खोखला करने में लगे हैं। आज वेद–विरोधी, अप्रामाणिक बातों, कथा, कहानियों की भरमार से देश के दो टुकड़े तो पहले ही हो चुके हैं और देश का भविष्य भी उज्जवल दिखाई नहीं देता। यही कारण था कि वह वेद–मन्त्रदृष्टा ऋषि, आज के परमाणु बम से भी हजारों गुणा अधिक प्रचण्ड शक्ति के प्रतीक आदि ब्रह्मास्त्र जैसे सक्ष्म शस्त्रों को एकलव्य एवं कर्ण आदि अनाधिकारी योद्धाओं को न देकर मानवता की रक्षा करते थे। आठ सौ वर्ष मुगलों एवं दो सौ वर्ष अंग्रेजों की गुलामी में भारतीय संस्कृति को अत्याधिक हानि पहुंचाई गई है। विदेशियों का यह अटूट विश्वास रहा है–

"If you want to destroy a nation then destroy its culture and the nation shall perish at its own accord."

अर्थात् यदि तुम किसी देश को नष्ट करना चाहते हो तो उसकी संस्कृति को नष्ट कर दो। तब देश स्वतः ही नष्ट हो जाएगा। अतः हमारे महाभारत (गीता), रामायण एवं वेदों आदि के शब्दार्थों में भी हेर–फेर किया गया है। उदाहरणार्थ महाभारत के प्राचीन, मूल एवं शुद्ध केवल 10,000 श्लोक विद्वानों के प्रमाण में हैं। परन्तु वर्तमान में यह श्लोक एक लाख बीस हज़ार के करीब हो चुके हैं। अतः इसी संदर्भ को लेकर हमें समझना है कि प्राचीनकाल में वेद विद्या ही प्रचलित थी और मनु स्मृति श्लोक 2/20

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।"

इसके अनुसार यह भारतवर्ष, चक्रवर्ती राजा के आधीन था और महाभारत काल तक चक्रवर्ती राजा ही हुए थे। उस समय कोई मत–मतांतर नहीं था, सर्वत्र वेदवाणी ही गूंजती थी जिसके अनुसार कोई जाति प्रथा अथवा ऊँच–नीच का प्रश्न नहीं था। परन्तु एकलव्य एवं कर्ण को भी मिथ्यावादियों ने जातिप्रथा के आधार पर द्रोणाचार्य द्वारा ब्रह्मास्त्र न दिए जाने की झूठी कथा कहकर, हमारी संस्कृति का विनाश किया है। चारों वेदों के ज्ञाता, गृहस्थ में भी ब्रह्मचर्य धारण करने वाले, यज्ञ एवं योगाभ्यास का अनुष्ठान नित्य करने वाले, द्रोणाचार्य को आज ऐसा कहकर, वह लोग बदनाम करते हैं जो यज्ञ, वेद एवं योगाभ्यास के विरोधी हैं। वस्तुतः द्रोणाचार्य जिन्हें भगवान श्री कृष्ण ने गीता श्लोक 1/7 में द्विज कहा है। अर्थात् **"द्विजोत्तम"** शब्द वैदिक है और गूढ़ तथा मार्मिक अर्थ लिए हुआ है जिसे आज प्रायः वेदाध्ययन में आई कमी के कारण भुला दिया गया है। **"द्वि"** शब्द का अर्थ है दूसरा और **"ज"** अक्षर का अर्थ यहाँ जन्म है। मनु स्मृति श्लोक 2/169 में कहा है कि वेद की आज्ञानुसार मनुष्य का प्रथम जन्म माता–पिता द्वारा और दूसरा आध्यात्मिक जन्म वेदज्ञ विद्वान से दीक्षा लेने पर कहा गया है। वेद विद्या का ज्ञान प्राप्त करने के कारण द्रोणाचार्यजी को द्विजों में भी उत्तम द्विज कहा गया है।

द्रोणाचार्य का भाव था कि यदि मैंने इन दोनों को ब्रह्मास्त्र की शिक्षा दे दी तो इनका प्रयोजन तो सिर्फ अर्जुन को मारना ही है और दोनों योद्धा अधर्मी कौरवों का ही साथ देंगे जिससे धर्म लुप्त हो जाएगा। अतः द्रोणाचार्य ने उन दोनों को शिक्षा देने का अधिकारी नहीं माना था। परन्तु दुर्भाग्य से

वेदानुकूल यज्ञ, योगाभ्यास आदि द्वारा इन्द्रियों पर नियंत्रण न रहने के कारण, परमाणु शक्ति आज ऐसे व्यक्तियों के हाथ में पहुँच चुकी है, जिससे मानवता को सदा खतरा बना ही रहेगा । इसी अभिप्राय से सनातन वाणी यजुर्वेद मन्त्र 40/14 में ईश्वर ने भौतिक (विज्ञान) एवं आध्यात्मिक, इन दोनों उन्नतियों को मानव कल्याणार्थ साथ-साथ उन्नत करने का उपदेश दिया है, जो आज प्रायः पूर्णतः नजरअंदाज़ होता जा रहा है। और इससे मानवता को भूतकाल में भयंकर हानि पहुँची है, वर्तमान में असंतोष, बीमारियाँ, उग्रवाद बढ़ता जा रहा है और वर्तमान के आधार पर विश्व का भविष्य घोर अंधकार युक्त ही कहा जाएगा । पुनः सृष्टि रचना को लेते हैं। यजुर्वेद मन्त्र 23/63 में ईश्वर को "**स्वयंभू**" कहा है । स्वयं अर्थात् अपने आप एवं भू सत्तायाम्-जिसकी सत्ता स्वयं से ही है और इस प्रकार ईश्वर की उत्पत्ति का कोई भी कारण न होने से ईश्वर जन्म-मृत्यु आदि दोष से रहित है । फलतः कारण न होने से वेदानुसार ईश्वर अवतार नहीं लेता। मन्त्र में कहा स्वयंभू (ईश्वर) ने प्रकृति द्वारा सूर्यादि समस्त विश्व को रचा है। वही संसार का पालन पोषण करता है । प्रत्येक वेद की तरह यजुर्वेद मन्त्र 31/7 में भी कहा कि सृष्टि रचना के समय ही चारों वेदों की उत्पत्ति ईश्वर द्वारा कही गई है। ध्यान रहे कि ईश्वर की शक्ति से प्रकृति में हलचल होती है और यह संसार बन जाता है। ऐतरेयोपनिषद् ने इस बात को इस प्रकार कहा "**स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति**" अर्थात् ईश्वर में ईक्षण हुआ जो कि स्वाभाविक है और प्रकृति द्वारा रचना प्रारम्भ हो गई। अतः यह जड़ जगत, प्रकृति से बना है, ईश्वर से नहीं। फलस्वरुप जगत की रचना, सूर्य एवं शरीर आदि सब नाशवान हैं। परन्तु चारों वेदों का ज्ञान स्वयं ईश्वर से निकला है। ईश्वर अविनाशी है अतः ईश्वर से उत्पन्न एवं अंगिरा, आदित्य, वायु आदि ऋषियों में ईश्वर की सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ वेदों का ज्ञान भी अविनाशी है। अथर्ववेद मन्त्र 9/6(1)/1 में ईश्वर के लिए यज्ञ की सामग्री, शरीर के जोड़, ऋग्वेद के मन्त्र-रीढ़ की हड्डी, सामवेद के मन्त्र, शरीर के रोम और यजुर्वेद के मन्त्र हृदय कहे हैं । भाव यही है कि प्रत्येक मनुष्य का यह शरीर वेदाध्ययन, यज्ञ एवं योगाभ्यास द्वारा, अपने अन्दर ईश्वर एवं ईश्वर के साथ चारों वेदों के मन्त्रों को प्रत्यक्ष करें । यही मानव जीवन का लक्ष्य भी है। जो यजुर्वेद मन्त्र 40/2 के अनुसार वेदोक्त शुभ कर्म

करते–करते गृहस्थादि किसी भी आश्रम में प्राप्त करने योग्य है। और जो इस लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, वही ऋषि है और उसी ब्रह्मऋषि की कृपा से हम ब्रह्म को जानने में समर्थ होते हैं। ईश्वर, प्रकृति एवं जीव, इन तीनों तत्त्वों का रहस्य स्वयं ईश्वर ने वेदों में दिया है। ऋग्वेद ज्ञानकाण्ड है जिसमें अधिकतर संसार के सूर्यादि प्रत्येक पदार्थ का बोध है। यजुर्वेद में विशेषकर मनुष्य द्वारा करने योग्य शुभ कर्मों का ज्ञान है। अतः इस वेद को कर्मकाण्ड का द्योतक कहा। सामवेद में उपासना विशेष है। अथर्ववेद में तीनों वेदों की सिद्धी, शरीर तथा औषधि विज्ञान है। सारांश है कि जब सृष्टि प्रलयावस्था में है अर्थात् प्रकृति अपने मूल स्वरूप में है अर्थात् पिछली सृष्टि नष्ट हो चुकी है। तब ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 129 मन्त्र 3 एवं 5 कहता है कि चेतन अवस्था में सब कुछ देखने वाला, उस समय केवल एक चेतन ईश्वर होता है, दूसरा जड़ प्रकृति, तीसरा मुक्त जीवात्माएँ और अन्य कर्म बन्धन में फंसी प्रायः मूर्छित अवस्था में असंख्य जीवात्माएँ कर्मानुसार जन्म लेने की प्रतीक्षा में होती हैं। पुनः इस सूक्त का मन्त्र 6 कहता है कि पिछली सृष्टि के सब विद्वान शरीर छोड़ चुके होते हैं, नई सृष्टि में कोई विद्वान होता नहीं है, अतः यह रहस्य कौन जाने कि किसने सृष्टि रची और मानव जीवन का लक्ष्य क्या है? इत्यादि। क्योंकि जब तक ज्ञान नहीं दिया जाएगा तब तक ज्ञान नहीं हो सकता, ऐसा ईश्वरीय नियम है। और यही कारण है कि आज भी घने जंगलों में रहने वाली पिछड़ी जातियाँ बिना घर–बार के जंगलों में नग्न ही रहती हैं। क्योंकि उनका संपर्क शेष संसार से नहीं है। अतः इस विषय में पताञ्जलि ऋषि ने योगशास्त्र सूत्र 1/26 में कहा–

"स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"

अर्थात्–**(स एष)** वह ईश्वर हमारे **(पूर्वेषाम्)** पूर्व के गुरुओं का **(अपि)** भी **(गुरुः)** गुरु है **(कालेन अनवच्छेदात्)** क्योंकि वह समय एवं मृत्यु के बंध न से रहित है।ऋग्वेद मन्त्र 10/190/3 में कहा–

"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वम् अकल्पयत्"

अर्थात् जैसे इस सृष्टि में सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि की रचना है, ऐसी ही रचना पहले की भी सृष्टियों में थी। अर्थात् ईश्वर द्वारा सृष्टि रचना, पालना एवं संहार अनादि है। अनन्त बार पृथ्वी बनी है और बिगड़ी है, प्रत्येक पृथ्वी के रचना के आरम्भ में ईश्वर अपने दया भाव से मनुष्यों को चारों वेदों का ज्ञान

देता है। इस सृष्टि के आरम्भ में भी लगभग एक अरब 97 करोड़ से कुछ अधिक वर्ष पहले अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषियों के हृदय में अपनी सामर्थ्य से ईश्वर ने चारों वेदों का ज्ञान प्रकट किया था। उसके पश्चात् उनसे शिष्य परंपरा द्वारा आज तक वेद एवं वेदों में कही योग विद्या का ज्ञान पृथ्वी पर निरंतर चला आ रहा है। अब विचार यह करना है कि ईश्वर ने अपने स्वरूप, जीवात्मा एवं प्रकृति के स्वरुप, उपसाना, कर्म एवं पदार्थ आदि का ज्ञान केवल चारों वेदों में ही दिया है जिसको जानकर पूर्व के ऋषि, राजर्षि एवं साधक शुभ कर्म करते हुए मानव जीवन के लक्ष्य, मोक्ष पद को प्राप्त हुए थे। और उसी परंपरा को आज भी हम पृथ्वी पर बनाए रखें। तथा यदि कोई वेदों के ज्ञान को न प्राप्त करके अन्य किसी मार्ग पर चलकर, ईश्वर प्राप्ति की घोषणा करता है, तब यह आश्चर्यजनक है कि ईश्वरीय नियम का उल्लंघन करके ऐसा कैसे हो गया? प्रत्यक्ष में कहा जाए तो ऐसे वेद विरोधी व्यक्ति ने ईश्वर को चकमा देकर– छल–कपट करके वेद एवं वेदोक्त कर्मों का त्याग करके क्या ईश्वर को पा लिया है? क्योंकि वेदों की उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ में करीब एक अरब 96 करोड़ 8 लाख 53 हजार दो वर्ष पहले से है जिस समय आज के मत–मतांतरों का उदय नहीं हुआ था।

धर्म

मनु स्मृति श्लोक 2/6 में कहा–''**वेदः अखिलः धर्ममूलम्**'' अर्थात् सारे धर्म (कर्त्तव्य–कर्म) वेदों से ही निकले हैं। सम्पूर्ण वेद और वेद के ज्ञाता, विद्वानों द्वारा रचित शास्त्र, उपनिषद् एवं याज्ञवल्कय स्मृति इत्यादि तथा वेदों में कहे शुभ कर्मों का विद्वानों द्वारा आचरण तथा ऐसे शुभाचरण द्वारा आत्मा का सदा प्रसन्न रहना, यह सब ''**धर्ममूलम्**'' धर्म के मूल हैं। धर्म का यहाँ अर्थ, वेदोक्त शुभ कर्म करना है। आत्मा की प्रसन्नता का अर्थ है कि हम सदा वेदोक्त शुभ कर्म ही करें। अर्थात् वेद विरुद्ध वह कर्म न करें जिस कर्म के करने से हमें भय, संशय, लज्जा एवं पछतावा आदि हो तथा कर्म करते हुए यह डर न हो कि किसी को पता चल जाएगा तो हम निंदा के पात्र बनेंगे इत्यादि। उदाहरणार्थ–अधर्मयुक्त विषय–विकार, चोरी डकैती, झूठ बोलना, छल–कपट करना, निंदा इत्यादि अनेक ऐसे कर्म हैं जिनके करने से स्वयं को भय, संशय, इत्यादि उत्पन्न होते हैं। अतः मनुष्य चोला वेदोक्त कर्म करते हुए अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष की सिद्धि प्राप्त करने के लिए ही मिला है। तभी ऋग्वेद मन्त्र 8/33/11 ने पुरुष को हजारों प्रकार से मेहनत करने वाला तथा स्त्री को ऋग्वेद मंत्र 8/98/11 में ''**माता शतक्रतो**'' अर्थात् सैंकड़ों प्रकार से मेहनत करने वाली कहा है। यजुर्वेद मन्त्र 8/48 का भाव है कि प्राणी गृहस्थाश्रम में व्यभिचार युक्त कर्म से सदा दूर रहे क्योंकि विषय–विकारी कर्म शरीर और मानसिक बल का नाश कर देते हैं फलस्वरूप नर–नारी मनुष्य जन्म के लक्ष्य अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को नहीं प्राप्त कर पाते। तभी यजुर्वेद मन्त्र 8/42,43 में पत्नी को तथा मन्त्र 8/48 में पति को वेद की शिक्षा ग्रहण करने वाला तथा संयमी कहा है। और ऐसे गृहस्थाश्रम को यजुर्वेद मन्त्र 8/4 में शुभ यज्ञ कहकर पुकारा है। ऐसा गृहस्थ जहाँ वेदज्ञ विद्वानों का आदर होता है और ऐसे विद्वानों से, वेदोक्त शुभ कर्म की शिक्षा प्राप्त की जाती है, उसे इस मन्त्र में ''**देवानाम् सुम्नम् प्रति एति**'' अर्थात् सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त करने वाला गृहस्थ कहा है, वहाँ

कलह, बीमारियाँ, परेशानियाँ, अविद्या आदि क्लेश प्रवेश नहीं कर पाते क्योंकि वेदज्ञ विद्वान के संग एवं फलस्वरुप यज्ञ रुपी शुभ कर्मों के करने से ऐसे गृहस्थाश्रम के सदस्यों में **''सुमतिः आववृत्यात्''** अर्थात् श्रेष्ठ बुद्धि वर्तमान रहती है और **''वाम् मृडयन्तः''** स्त्री–पुरुष सदा सुखी रहते हैं।

इस विषय में यजुर्वेद मन्त्र 40/2 स्पष्ट कहता है–**''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः''** अर्थात् शुभकर्म करते–2 ही दुःख रहित लंबी आयु प्राप्त करो। इसी कारण मनुस्मृति श्लोक 2/6 में चारों वेदों को धर्म अर्थात् कर्म का मूल कहा है अर्थात् चारों वेदों से ही सब शुभ कर्मों का उदय हुआ है। और वेदोक्त शुभ कर्म करके ही मानव सुखी रहता है। भगवद् गीता श्लोक 3/15 में इसी भाव को प्रकट करते हुए श्री कृष्ण महाराज कहते हैं **''कर्म ब्रह्मोदभवं''** अर्थात् हे अर्जुन! सब शुभ कर्म वेदों से ही उत्पन्न हुए हैं और वेदों को तू ईश्वर से उत्पन्न हुआ जान और ईश्वर सदा यज्ञ में प्रतिष्ठित है। यास्क मुनि ने शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में यजुर्वेद मन्त्र 1/1 **''वः श्रेष्ठतमाय कर्मणाः''** का भाव प्रकट करते हुए **''यज्ञो वै श्रेष्ठतमम् कर्मः''** यज्ञ को ही संसार का सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा है। यजुर्वेद मन्त्र 7/48 का भाव है कि ईश्वर रचित इस सृष्टि में जीव सदा कर्म करने की इच्छा करता है, अतः कर्म करता है। कर्म के बिना कोई व्यक्ति अपनी आँख बंद करने और खोलने की क्रिया भी नहीं कर सकता। अतः मनुष्य कर्म करता है एवं ईश्वर उस किए हुए कर्म का फल देता है। फलतः जीव सदा शुभ कर्म करे, अशुभ की कामना न करे। इस वेदमन्त्र के आधार पर ही मनुस्मृति श्लोक 2/2 से 2/5 में स्पष्ट किया है कि मनुष्य द्वारा निष्कामना उचित नहीं क्योंकि यज्ञ, वेदाध्ययन, योगाभ्यास एवं सब शुभ कर्म कामना से ही प्रारम्भ किए जाते हैं। यदि कर्म करने की इच्छा ही नहीं होगी तो कोई भी शुभ कर्म नहीं हो सकता और जीव आलसी होकर नरकगामी हो जाएगा। प्रायः कई सन्त केवल ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त करने की बात करते हैं और कर्म काण्ड को नकार देते हैं परन्तु यह पूर्णतः वेद विरूद्ध विचार है। अथर्ववेद मन्त्र 12/5/1 में **''श्रमेण''** अर्थात् पुरूषार्थ एवं धर्माचरण द्वारा सब मनुष्यों को शुभ कर्म करने का आदेश है। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ काण्ड 14 अध्याय 4 ब्राह्मण 3 कंडिका 9 में कहा–

"कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाश्रद्धा धृतिरधृति-
-र्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव तस्मादपि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाति।"

इस श्लोक में '**कामः**' का अर्थ है कि वेदाध्ययन में तर्क-वितर्क के साथ विचार करके केवल वेदोक्त शुभ कर्म निश्चित करके उन शुभ कर्मों को ही करना और पापयुक्त बुरे कर्मों का त्याग करना। संकल्प का अर्थ है वेदविद्या में कहे शुभ कर्म यज्ञ एवं योगाभ्यास आदि शुभ गुणों को प्राप्त करने के लिए ऋग्वेद मन्त्र 1/95/1 के अनुसार दिन रात मेहनत करने की इच्छा और तदानुसार मेहनत करना, यह आचरण सहित संकल्प है। विचिकित्सा-सत्य कर्म निश्चित करने के लिए तर्क-वितर्क, प्रश्न-उत्तर द्वारा उस कर्म के प्रति शंका समाधान आवश्यक है। अतः किसी कर्म को करने के लिए जब सन्देह उत्पन्न हो कि यह सत्य कर्म है अथवा नहीं, उसे विचिकित्सा कहते हैं।जैसा कि यजुर्वेद मन्त्र 40/6 में कहा-

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति।।"

अर्थात् जो योगी वेदाध्ययन करके, वेदोक्त धर्म-कर्म पर आचरण करने वाले हैं एवं वेदों में कहे अष्टाँग योग का कठोर अभ्यास करने के पश्चात् उस पर-ब्रह्म परमेश्वर को अपने हृदय में प्रकट करते हैं तथा इस प्रकार सब जड़ एवं चेतन जगत को ईश्वर में ही देखते हैं तथा प्रकृति के रज, तम एवं सत्व, तीन गुणों से रचित इस संसार के कण-कण में सर्वव्यापक ईश्वर का अनुभव करते हैं, तब ऐसे आचरणयुक्त योगी को "न विचिकित्सति" अर्थात् ईश्वर तथा संसार आदि के विषय में कोई सन्देह शेष नहीं रह जाता। अतः स्पष्ट है कि जो वेदाध्ययन, धर्माचरण एवं योगाभ्यास से हीन हैं और केवल पढ़, सुन, रट कर स्वयं को ऋषि, गुरु अथवा संत कहते है, वह सदा संदेहयुक्त एवं मिथ्यावादी होते हैं।

श्रद्धा का अर्थ है "**श्रत्+धा**" इति श्रद्धा अर्थात् सत्य पर धारणा। ईश्वर एवं ईश्वर द्वारा वेदों में कहे शुभ कर्म सत्य हैं। अतः वेदों में वर्णित ईश्वर के सत्य स्वरुप एवं शुभ कर्म आदि में पूर्ण विश्वास एवं निश्चय का स्थिर हो जाना ही श्रद्धा है। वेद-विरुद्ध, स्वयं कल्पित धर्म अथवा कर्म अथवा पूजा पर विश्वास टिक जाना, श्रद्धा नहीं कहलाता। यह तो योगशास्त्र सूत्र

2/3 में कहे पाँच क्लेशों में कहा अविद्या रुपी क्लेश है। अधर्मयुक्त, बुरे कर्मों में श्रद्धा न होना अर्थात् अविद्या आदि क्लेश, पापयुक्त कर्म, नास्तिकवाद इत्यादि बुरे कर्मों से दूर रहने का नाम 'श्रद्धा' है। कितने भी कष्टों में फंसकर सुख–दु:ख, हानि–लाभ इत्यादि में सत्य, धर्म को न छोड़ना, धृति है। वेद विरुद्ध अर्थात् पापयुक्त कर्मों से अलग न रहना अधृति है। वेद विरूद्ध, झूठे, असत्य कर्म का आचरण और वेदानुकूल सत्य कर्म न करना जिससे मन शर्म महसूस करता है, इसे ''ह्रोः'' कहते हैं। ''धीः'' वेदोक्त श्रेष्ठ गुणों को धारण करने वाली वृत्ति ''धी'' है। वेदोक्त सत्याचरण करने वाली वृत्ति का नाम ''भीः'' है और ऐसा सोचना किं ईश्वर हमें सब जगह देख रहा है तो हम पाप न करें, अप्रसन्न होकर ईश्वर पाप की सजा देगा। ऐसी गुण वाली वस्तु का नाम मन है। अतः हम सदा मानवता के कल्याण के लिए कर्म करें। सबको सुखी करें, ऐसा ही प्रयत्न हम करें तभी हमें शांति प्राप्त होगी। ईश्वर ने हम सब प्राणियों के लिए, परम सुख प्राप्ति के लिए ही, यजुर्वेद मन्त्र 40/8 में कहा ''समाभ्यः याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात्'' अर्थात् सब प्राणियों के लिए यथार्थरूप से, चारों वेदों के ज्ञान द्वारा सृष्टि के पदार्थों का उपदेश दिया है। जिनमें ज्ञान काण्ड, कर्मकाण्ड एवं उपासना काण्ड, इन तीन विद्याओं का दर्शन होता है। अतः ज्ञानयुक्त कर्म एवं उपासना, इन तीनों विद्याओं द्वारा ही मनुष्य, संसार रुपी भवसागर से पार होता है, अन्यथा नहीं। अतः धर्म शब्द का विशेष अर्थ , वेदोक्त शुभ कर्म ही कहा गया हैं जैसा कि वैशेषिक शास्त्र सूत्र 1/2 में कहा–

'यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः''

''अभ्युदय'' का अर्थ लौकिक सुख एवं **''निःश्रेयस''** का अर्थ मोक्ष सुख की प्राप्ति है। अर्थ हुआ कि वह शुभ कर्म जिनको करने से प्राणी को इस लोक अर्थात् अपने जीवन काल में भौतिक–आत्मिक सुख प्राप्त हो तथा दूसरा मोक्ष सुख की भी प्राप्ति हो, उसे धर्म कहते हैं। मिंमासा शास्त्र में जैमिनी ऋषि ने सूत्र 1/2 में धर्म का लक्षण **''प्रेरणा''** कहा है। जिसके द्वारा किसी पदार्थ की जानकारी होती है, उसे **''लक्षण''** कहा है। जैसे दूर कहीं आकाश में धुआँ उड़ता दिखाई देता है, तो उस धुएँ से अग्नि की जानकारी होती है, कि वहाँ कहीं अग्नि जल रही है अग्नि की जानकारी ध ुएँ से हुई। इसी प्रकार धर्म का लक्षण अर्थात् धर्म की जानकारी प्रेरणा से

होती है। अतः प्रेरणायुक्त वेदोक्त विषय धर्म कहा गया है। शास्त्र में कहा–**"न उपदेशम् अन्तरा ज्ञानोत्पत्तिः"** अर्थात् उपदेश के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः मनुष्य को गुरु ज्ञान की आवश्यकता होती है। योग–शास्त्र सूत्र 1/26 के अनुसार ईश्वर हमारे पूर्वजों का प्रथम गुरू है और इसके पश्चात् ईश्वर की वाणी, वेद का ज्ञान देने वाले, ऋषि–मुनि आज तक हमें वेद–विद्या द्वारा प्रेरणा देकर धर्म–कर्म के रहस्य समझाते आए हैं। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ 14/6/10/2 में कहा–

"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद"

अर्थात् माता–पिता और आचार्य की विद्या प्राप्त करके ही मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है। तो पूर्व के ऋषि–मुनियों ने वेदों के अनुसार, धर्म की यह परिभाषा की है कि जिन वैदिक वचनों को सुनने से, प्रेरणा प्राप्त करके जीव, शुभ कर्म द्वारा, इस लोक में रहते हुए, लौकिक सुख, धन–सम्पदा आदि को प्राप्त करता हुआ, मोक्ष सुख को भी प्राप्त करता है, उसे धर्म कहते हैं। इस प्रकार वेदोक्त शुभ कर्म करना ही मनुष्य का धर्म है। और ऐसा शुभ कर्म, इस लोक एवं परलोक, दोनों लोकों में सुख देने वाला होता है। तथा प्रत्येक प्राणी चाहता भी सुख ही है। दुःख कोई नहीं चाहता। परन्तु विद्वानों की विद्या से ओत–प्रोत वचन न सुनने के कारण प्राणी को सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा नहीं मिल पाती। और प्रायः ऐसे प्रेरणायुक्त वचनों के अभाव में प्राणी अविद्या–ग्रस्त होकर, सत्य मार्ग से भटक जाता है। फलस्वरूप दुःख के सागर में डूब जाता है। सामवेद मन्त्र 259 में कहा **"इन्द्र क्रतुम् नः आभर"** अर्थात् हे ईश्वर! हमें शुभ कर्म करने की प्रेरणा दो। सृष्टि के आरम्भ में चारों वेद, ईश्वर से निकली अमर वाणी है जो सम्पूर्ण मानव समाज को आज तक सुख–सम्पन्न होने के लिए, शुभ कर्मों की प्रेरणा दे रही है। इस प्राचीन एवं सनातन संस्कृति को हम श्रीराम, श्रीकृष्ण की तरह, वर्तमान में भी समझकर धनवान, बलवान, विद्यावान, मोक्षवान आदि असंख्य गुणों को धारण करें। यह वैदिक प्रेरणा अथर्ववेद मन्त्र 12/5(1)/3 ने कहा **"प्रतिष्ठिता लोको निधनम्"** अर्थात् यज्ञ में वेद–विद्या का स्थान है। जिसके लिए यास्क मुनि ने कहा– **"यज्ञौ वै श्रेष्ठतमम् कर्मः"** अतः यज्ञ शब्द का सुन्दर अर्थ माता–पिता, अतिथि, गुरु की सेवा, अग्निहोत्र, वेद–विद्वान की सेवा से विद्या लाभ प्राप्त करना तथा सुपात्र को दान कहा है। यजुर्वेद

में प्रेरणा दी– **"यज्ञं कुरु–यज्ञं कुरु"** अर्थात् यज्ञ करो, यज्ञ करो। यजुर्वेद मन्त्र 6/11 में स्पष्ट आज्ञा है कि यज्ञ करने वाले यज्ञमान, गौ आदि पशुओं की रक्षा करें। मन्त्र में आगे कहा कि मनुष्य में बढ़ाने वाले सुख, यज्ञ करने वाले पुरूष को ही प्राप्त होते है। अर्थात् ईश्वर से प्रेम, मानवता एवं गृहाश्रम आदि में जब प्रेम, भाईचारा बढ़ता है तब ऐसे प्रेम से मानव हृदय आनन्दित होता है– हृदय में सुख की अनुभूति होती है। इस मन्त्र में ऐसे सुख की अनुभूति का आधार यज्ञ कहा गया है। यजुर्वेद मन्त्र 30/1 में ईश्वर से प्रार्थना है कि हे ईश्वर! हमें प्रेरणा दो कि हम बार–बार यज्ञ करें और जो यज्ञमान यज्ञ कराता है, उसे पृथिवी के सब सुख प्राप्त हों अर्थात् जो यज्ञ नहीं करते वह संसार में ऊँच–नीच, गरीबी–अमीरी इत्यादि से हटकर सबसे समान व्यवहार वाला सुख समाज को नहीं दे पाते एवं यज्ञ के बिना प्राणी को स्वयं भी धन, अच्छा स्वास्थ्य, सुखी परिवार लम्बी आयु इत्यादि का वास्तविक सुख प्राप्त नहीं होता। अतः विश्व में भाईचारा बढ़ाने के लिए भी प्राणी को यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ द्वारा समय पर वर्षा एवं अन्न बढ़ाकर पशु–पक्षी में वृद्धि होगी जिससे समाज को दूध–धी आदि पौष्टिक पदार्थ प्राप्त होंगे। अतः इस प्रकार यज्ञ द्वारा हम समाज की सेवा भी करते हैं। यजुर्वेद में यहाँ तक कहा– **"स्वः यज्ञेन कल्पन्ताम्"** अर्थात् ब्रह्म की अनुभूति का सुख भी यज्ञ से प्राप्त होता है। अतः आज प्रायः वेद विरोधी सन्तों का यह प्रचार अप्रमाणिक एवं मिथ्या है कि यज्ञ केवल कर्मकाण्ड है और केवल सांसारिक इच्छा पूरी करता है। गहराई से विचार करेंगे तो हमें यह भी ज्ञान होता है कि संसारी पदार्थ अर्थात् धन, निरोगता, सुखी परिवार इत्यादि के बिना ईश्वर भक्ति असंभव है। अतः यज्ञ भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों मार्ग पर चलने का सम्पूर्ण ज्ञान देता है। यजुर्वेद मन्त्र 1/6 में कहा **"कः त्वा युनक्ति", सः त्वा युनक्ति"** अर्थात् कौन तुझे यज्ञ की प्रेरणा देता है? उत्तर में कहा–**"सः"** अर्थात् वह ईश्वर हमें यज्ञ की प्रेरणा दे रहा है। इस मन्त्र में फिर प्रश्न किया कि किसलिए यज्ञ की प्रेरणा दे रहा है? उत्तर में कहा **"तस्मै त्वा युनक्ति"** अर्थात् यजुर्वेद मन्त्र 1/1 से आगे के मन्त्रों में यज्ञमान और संसार को सुख देने के लिए, निरोगता के लिए, वायुमंडल को शुद्ध करने के लिए, समय पर वर्षा द्वारा अन्न एवं पशु आदि बढ़ाने के लिए फलस्वरुप दूध–घी आदि पौष्टिक पदार्थ पाने के लिए **"मा**

वस्तेन'' चोर, डाकुओं एवं दुष्टों से बचने के लिए, **''अग्ने व्रतपते व्रतम् चरिष्यामि''** ईश्वरीय नियम में रहकर परिवार सहित सुखी रहने के लिए **''अनमीवाः अयक्ष्माः''** संक्रामक रोग आदि भयंकर बीमारियों से बचने के लिए इत्यादि–इत्यादि, अनेक सुखों सहित मोक्ष सुख तक को पाने के लिए यज्ञ करो, ऐसा वेदों का उपदेश है। यजुर्वेद 18वें अध्याय में तो दाल, घी, पानी, लोहा, लकड़ी, मिट्टी आदि असंख्य पदार्थों की शुद्धि केवल यज्ञ द्वारा ही कही गई है। दिन और रात्रि का शुभ होना तथा आयु की वृद्धि इत्यादि अनेक सुख यज्ञ द्वारा ही कहे गए हैं।

चारों वेदों से यह सिद्ध है कि लौकिक और पारलौकिक मोक्ष सुख इत्यादि यज्ञ द्वारा ही प्राप्त होते हैं और यज्ञ करने की आज्ञा वेदों में ईश्वर ने दी है। यजुर्वेद मन्त्र 2/23 में तो यहाँ तक कहा है कि जो यज्ञ एवं वेदों के विद्वानों को छोड़ देता है तो ईश्वर भी उन्हे दुःख देने के लिए छोड़ देता है। अतः हमें आज इस गहन विचार की आवश्यकता है कि हम वेदों में कही ईश्वर की आज्ञा मानकर यज्ञ करके सुख सम्पदा एवं मोक्ष प्राप्त करें अथवा आज के प्रायः वेद विरोधी सन्त मनुष्यों की मिथ्यावाणी सुनकर, यज्ञ कर्म का त्याग करके, ईश्वर द्वारा दिए दुःख के भागी बनें। यज्ञ में बैठकर ही वेद के प्रवचनों द्वारा कर्म, ज्ञान एवं उपासना–यज्ञ, योगाभ्यास आदि विद्या का प्राप्त होना कहा गया है। तभी तुलसी ने भी श्रीराम के विषय में कहा हैः–

''वेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं।
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं।।''

अर्थात् गुरु वसिष्ठ वेद विद्या को सुनाते और श्रीराम श्रद्धापूर्वक सुनते थे और फलस्वरुप ही दशरथ अथवा राम राज्य में प्रजा सुखी थी। इसी सनातन परंपरा को पुनः कायम करने की आवश्यकता है।
आगे कहा–

''कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कँह दीन्हे।।
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरदंर।।''

अर्थात् गुरू वसिष्ठ से वैदिक प्रेरणा पाकर भगवान राम ने अपने जीवन में करोड़ों यज्ञ किए थे और विद्वानों को श्रद्धापूर्वक अनेक प्रकार के दान दिए थे।

भारत–एक आर्यावर्त्त देश

यह एक तथ्य है कि प्रत्येक वर्तमान धर्म अपने धार्मिक ग्रन्थों द्वारा ही सत्य–असत्य का प्रमाण प्रस्तुत करता है। यह भी सब विश्व मानता है कि विश्व के पुस्तकालयों (ब्रिटेन में भी) में सबसे पुरातन ग्रन्थ चार वेद ही हैं। यजुर्वेद मन्त्र 31/1, ऋग्वेद मन्त्र 10/129/1–6 तथा सामवेद मन्त्र 617 तथा अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 6 स्वंय कह रहे हैं कि वेद ईश्वर से उत्पन्न अलौकिक ज्ञान है, जिसमें कोई वर्त्तमान के धर्मों अथवा जातिवाद का वर्णन क्षणिक भी नहीं है। अतः सब मानव एक ईश्वर की संतान हैं और सबको प्रेम, भाईचारे से रहने का ईश्वर का आदेश है। मनुस्मृति धार्मिक ग्रन्थ है, जिसके अनुसार वर्तमान सृष्टि का यह सातवाँ मनवन्तर है। इससे पहले 6 मनवन्तर बीत चुके हैं।

यह हैं–स्वायम्भव, स्वारोचिस, औत्तमि, तामस, रैवत, चाक्षुष; यह छह बीत चुके हैं और सातवाँ–वेवस्वत मनवन्तर चल रहा है। 71 चतुर्युगियों का नाम एक मनवन्तर है। सत्रह लाख, 28 हजार वर्षों का एक सतयुग; बारह लाख 96 हजार का त्रेता, आठ लाख 64 हजार वर्षों का द्वापर और चार लाख 32 हजार वर्षों का कलियुग। इन चार युगों का योग 43 लाख बीस हजार हुआ जो एक चतुर्युगी हुई। ऐसी 71 चतुर्युगियों अर्थात् तीस करोड़, 67 लाख, 20 हजार वर्षों का एक मनवन्तर है और ऐसे 6 मनवन्तर अब तक बीत चुके हैं। इस चतुर्युगी के कलियुग के लगभग 5 हजार से अधिक वर्ष बीत चुके हैं। अतः अब तक पृथिवी तथा वेदों को बने, एक अरब 96 करोड़ 8 लाख 53 हजार दो वर्ष बीत चुके हैं। इस समय का कुछ–कुछ वर्णन गीता के श्लोक 8/17 में भी है। इस काल गणना का विस्तृत वर्णन मनुस्मृति श्लोक 1/64 से 1/80 तक पूर्ण रूप से किया गया है। उस समय पृथिवी पर वर्तमान धर्म अथवा जातिवाद अथवा वर्तमान की पूजापाठ नहीं थी। इन्हीं धर्मग्रन्थों

से यह पूर्णतः प्रामाणिक है कि उस समय हिन्दु शब्द भी किसी ग्रन्थ में नहीं था। यजुर्वेद अध्याय 31, ऋग्वेद मंडल 10 सूक्त 129, सामवेद 617, अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 6 में यह रचना एक ही ईश्वर द्वारा है। और मनुस्मृति 1/21 में भी कहा कि गऊ, अश्व इत्यादि नाम, उस परमात्मा ने वेद से लेकर रचे। मनुस्मृति श्लोक 1/136, 141; 2/17 के अनुसार भी पूरी सृष्टि में मनुष्य का पहला जन्म तिब्बत में हुआ। उस समय तिब्बत का नाम त्रिविष्टप था। श्रेष्ठों का नाम उस समय आर्य और दुष्ट कर्म करने वालों का नाम दस्यु था। पूरे विश्व की मानव जाति को उस समय आर्य कहते थे और दुष्टों को दस्यु कहते थे। तिब्बत से चलकर आर्य उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विंध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र तथा सरस्वती, पश्चिम में अटक नदी और पूर्व में दृषद्वती, जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकलकर, बंगाल के आसाम के पूर्व और ब्रह्मा (वर्मा) के पश्चिम से होकर, दक्षिण के समुद्र में मिली है, जिसको अब ब्रह्मपुत्र कहते हैं। उत्तर के पहाड़ों से निकलकर दक्षिण के समुद्र की खाड़ी में अटक नदी मिली है। हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर तक विंध्याचल के भीतर जितने भी देश हैं, उसे आर्यावर्त्त देश कहते हैं जो वर्तमान में भारतवर्ष अथवा हिंदोस्तान कहलाता है। इसका वर्णन महाभारत में भी मिलता है।

इन सब रचनाओं से यह सिद्ध है कि सम्पूर्ण पृथिवी पर मानव जाति केवल तिब्बत से आई। महाभारत ग्रन्थ लगभग पाँच हजार 84 वर्ष पूर्व व्यास मुनि ने लिखा है। इस ग्रन्थ में भी वर्तमान के धर्म अथवा जातिवाद का वर्णन नहीं है। हम सब मानव जाति महाभारत काल तक आर्य ही कहलाते आए हैं।अतः वेदों पर आधारित भारतीय संस्कृति (आर्य संस्कृति) पुरातन संस्कृति है। सिन्धु नदी के तट पर विकसित इस महान संस्कृति ने विविध दार्शनिक विचार धाराओं को जन्म दिया? यहीं पर तक्षशिला एवं नालंदा नामक विश्व विद्यालय थे जहाँ पर विदेशों से विद्यार्थी विद्या–अध्ययन करने आते थे, और सब भारतीय कहलाते थे। ग्रीकों एवं युनानियों ने पहली बार सिन्धु नदी के लिए और यहाँ के निवासियों के लिए इन्दु शब्द का प्रयोग किया। इसके बाद अरबों व फारस वासियों ने इस नदी के उस पार रहने वाले हम

भारतीयों को हिन्दी नाम दिया। अर्थात् सिन्धु नदी के उस पार जो भी रहते हैं, वह हिन्दु हैं। अतः यह निश्चित है कि हिन्दु शब्द महाभारत के पाँच हजार वर्ष के बाद उत्पन्न हुआ, जिसका गवाह इतिहास है। आज भी अमेरिका, ब्रिटेन, इज़रायिल इत्यादि में रहने वाले सभी हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई, सिख; सबकी अमरीकी ब्रिटिश, इजरायिली, राष्ट्रीय शब्दों से पहचान होती है। जब हिन्दु शब्द पाँच हजार वर्ष पहले लिखी महाभारत अथवा गीता ग्रन्थ में नहीं हैं, तो यह सिद्ध है कि हिन्दु शब्द आज से पाँच हजार साल पहले उत्पन्न हुआ है। उस समय तक हम सब आर्य थे। करीब दो–तीन हजार साल के अन्दर ही, हमें वेद, गीता, रामायण पढ़ने वाले हिन्दु कहकर पुकारा जाने लगा। जबकि यह ग्रन्थ आज से पाँच हजार वर्ष पहले तक सब मानव जाति के लिए धार्मिक ग्रन्थ थे। इन्हीं दो तीन हजार सालों के अन्दर जैन, बौद्ध, सिख, इस्लाम, एवं ईसाई धर्म उत्पन्न हुए और हम वेद शास्त्रों के मानने वाले हिन्दु रह गए। सब धर्मों की उत्पत्ति विश्व विख्यात है। और कोई भी धर्म आपस में लड़ाई नहीं सिखाता अपितु प्रेम एवं भाईचारे का पैगाम देता है।

परमेश्वर शरीर में ही निवास करता है

ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 135 मन्त्र में कहाः–

''यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः।
अत्रा नो विशपतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति।।''

(यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे) उत्तम पत्तों वाले जिस वृक्ष पर अर्थात् मानव शरीर में **(यमः)** जीवात्मा **(देवैः)** इन्द्रियों के साथ **(सम्पिबते)** कर्मफल भोगता है एवं **(अत्र)** यहाँ इस संसार में **(नः)** हम सबका **(विशपतिः)** पालन करने वाला पिता परमात्मा **(पुराणान्)** पुराने अर्थात् पूर्वजन्म के किए कर्मों **(अनु)** के अनुसार **(वेनति)** कर्म–फल देता है;

अर्थात् हे जीव तुझमें यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि एवं शरीर इसलिए दिया है कि तू इस संसार में आकर पिछले किए कर्मों का भोग भोगे। अगले ही मन्त्र का भाव है कि मनुष्य संसार में आकर पूर्व जन्म में किए पाप कर्मों के अनुसार दुःख भोगता है, परेशान होता है, परन्तु अज्ञानवश पुनः पाप कर्म करता है जिसका फल है दुःख, वह अगले आने वाले जन्मों में भोगता है। वेद–विद्या से विहीन जीवों का यह दुःख उठाने वाला कर्म विभिन्न योनियों में चलता रहता है। इस दुःख का विशेष कारण यह है कि जीवात्मा का स्वभाव **'परिष्वंगधर्मी'** अर्थात् लगाव वाला है। भाव यह है कि जीवात्मा अपने स्वभाव के कारण मनुष्य शरीर धारण करके भी या तो प्रकृति से बने इस पंचभौतिक शरीर एवं संसार में बने सोना–चांदी, विषय–विकार आदि अवगुणों से लगाव करता है और जैसा ऊपर कहा उसी के अनुसार पाप कर्मों में लिप्त हुआ बार–बार जन्म–मृत्यु में फँसा जीवात्मा दुःख उठाता रहता है। दूसरा तत्त्व जिससे जीवात्मा लगाव कर सकता है, वह परमात्मा है। मानव शरीर में आकर इन इन्द्रियों द्वारा जप, तप,

वेदाध्ययन, यज्ञ (देवपूजा, संगतिकरण, दान) इत्यादि शुभ कर्मों द्वारा अपने एवं ईश्वर के चेतन, अविनाशी स्वरूप को जानकर, सभी दुखों से छूट कर मोक्ष (परमानन्द सुख) पद प्राप्त करता है। यह मोक्ष सुख, गृहस्थाश्रम में ही सुलभ हो जाता है। मानव शरीर पाकर जीवात्मा का वास्तविक लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति (मोक्ष) ही है जो वेद–विद्या के ज्ञाता विद्वान की शरण प्राप्त किए बिना सम्भव नहीं होता। ऋृग्वेद मंत्र 10/135/4 में यह कहा कि वह जीवात्मा मानव शरीर धारण करके **"विप्रेभ्यः परि प्रावर्तयः"** वेद एवं योग विद्या के ज्ञाता गुरुजनों से ब्रह्म–विद्या प्राप्त करके तदानुसार वैदिक शुभ कर्म करके आत्मिक सुख प्राप्त करता है। इस प्रकार **'नावि समाहितम्'** तब विद्या प्राप्ति का शुभ फल जीवात्मा को जन्म–मृत्यु रुपी भव सागर से इस प्रकार पार कर देता है, जिस प्रकार बहती नदी में एक नाव पर रथ रखकर, उस रथ को नदी से पार किया जाता है। भाव यह है कि रथ सूखी जमीन पर, सड़क पर चलता है। यदि घोड़े रथ को लेकर नदी में घुस जाएँ तो निश्चित ही रथ नदी में डूब जाएगा। इसी प्रकार इस संसार को भी वेद शास्त्रों ने समुद्र अथवा नदी के समान कहा है और इस संसार में आकर जीव पाप कर्म करके जन्म–मृत्यु रुपी इस समुद्र में गोते खाता है। सामवेद मं. 109 कहता है कि ईश्वर हमें संसार रुपी भवसागर में यह शरीर पिछले कर्म भोगने एवं नवीन शुभ–कर्म करने के लिए देता है एवं **'देवम् देवासः दधन्विरे'** और इस परमेश्वर को वेदों के ज्ञाता योगीजन प्राप्त करते हैं। तो हे प्राणी विद्वानों की कृपा से **"तम गूर्धयः"** तू भी इस परमेश्वर को प्राप्त कर। अतः हमें वेदों के ज्ञाता गुरुजनों का संग करना अनिवार्य है। इसी आधार पर योगेश्वर श्री कृष्ण महाराज भगवद्गीता श्लोक 12/7 में दोनों सेनाओं के बीच खड़े, रथ में अर्जुन से इस संसार को **'मृत्यु संसार सागरात्'** अर्थात् मृत्यु रुपी संसार समुद्र कहा है। यजुर्वेद मंत्र में तो यहाँ तक कहा कि जीवात्मा बहती नदी का एक पत्थर है और जल के थपेड़े खाकर कभी इधर, कभी उधर लुड़कता रहता है। अतः वेदों द्वारा यह सिद्ध है कि मनुष्य का यह बहुमूल्य शरीर पाकर जीवात्मा यज्ञादि शुभ कर्मों द्वारा मोक्ष–पद को प्राप्त करे। सांख्य शास्त्र 2/44 में कपिल मुनि कहते हैं **"संभवेन्न स्वतः"** अर्थात्

बिना किसी विद्वान की प्रेरणा के अपने–आप ज्ञान का प्राप्त होना संभव नहीं होता। जब महा प्रलय होती है तब सभी विद्वान ऋषि–मुनि अपना शरीर त्याग चुके होते हैं। तब नई सृष्टि में सभी नर–नारी अज्ञानी उत्पन्न होते हैं। उस समय कोई किसी को ज्ञान नहीं दे सकता। श्वेताश्वतरोपनिषद् श्लोक 6/8 "**स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च**" अर्थात् ईश्वर का असीम ज्ञान, बल एवं कर्म स्वाभाविक है। अर्थात् निश्चित समय पर स्वयं होते रहते हैं। तब नई सृष्टि में निश्चित समय पर स्वंय ईश्वर से चारों वेदों का ज्ञान निकलकर अंगिरा, आदित्य, वायु और अग्नि इन चारों ऋषियों के हृदय में ईश्वर की सामर्थ्य से प्रकट हो जाता है। जैसा कि यजुर्वेद मंत्र 31/7–

'तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।'

इस मन्त्र में 'अजायत' क्रिया है अर्थात् जिस प्रकार हवाई जहाज से आवाज निकल रही है, उसी प्रकार ईश्वर से वेद का ज्ञान निकलता है। यजुर्वेद मंत्र 40/8 में ईश्वर को 'शुक्रम् अकाया' कहकर सर्वशक्तिमान शरीर रहित एवं समाज को वेदों द्वारा सब पदार्थों का ज्ञान देने वाला कहा है। योग शास्त्र के ऋषि पताञ्जलि ने सूत्र 1/26 में ईश्वर को सृष्टि के आरम्भ के अंगिरा आदि इन चार ऋषियों का गुरु कहा है। उसके पश्चात् ऋषि–मुनि हमारे जीवित गुरु होते हैं जिनके बिना ज्ञान होना असंभव था एवं असंभव है। अतः हमें वैदिक ऋषि परम्परा को पुनः स्थापित करके स्वयं, समाज एवं देश को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है। प्रायः आज के संत वेदों को कठिन एवं यज्ञ को केवल कर्मकाण्ड कहकर, केवल अपनी अप्रमाणिक मनघड़न्त बातें मनवाना चाहते हैं। इससे हमारी वैदिक परम्परा, जिसके प्रथम गुरु स्वयं परमात्मा है, उसका अनादर किया जा रहा है, जो एक घिनौना पाप है। हमें इस पाप से बचना होगा। इस विषय में स्वयं सामवेद मंत्र 225 कहता है कि ज्ञानी, वेदों का ज्ञाता एवं स्पष्ट वक्ता होता है और जब वह किसी जिज्ञासु को वेद–मंत्रों का ज्ञान समझाए तो वह जिज्ञासु मंत्रों को पूर्णतः समझ जाता है। अतः वेद–ज्ञान कठिन नहीं है, परन्तु वर्तमान

काल में वेद–विद्या का ज्ञाता मिलना कठिन है, केवल जिज्ञासुओं को ही मिलता है। ईश्वर ने स्वयं वेदों में वेद–विद्या के ज्ञाता ऋषि की महिमा गाते हुए मंत्र 777 में कहा कि हे ऋषि तुम्हारी महिमा में यह तीनों लोक खड़े हैं और वद–वाणियाँ स्वयं आपके हृदय में प्रकट होती हैं सभी प्राणी सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता, परन्तु ईश्वर भक्ति के बिना सुख नहीं, दूसरा वेद ज्ञान के बिना ईश्वर का स्वरुप एवं ईश्वर की भक्ति को नहीं जाना जा सकता और अन्त में वेद ने विशेष बात यह कही कि ऋषि अर्थात् वेद के ज्ञाता (गुरु) के बिना वेद ज्ञान पूर्णतः असम्भव है। इसलिए सामवेद मंत्र 777 में ईश्वर ने गुरु के विषय में प्रशंसा करते हुए कहा कि हे **'कवे इमा भुवना तुभ्यं महिम्ने तस्थिरे'** अर्थात् हे विद्वान **'अयं लोकः भवतो महात्म्याय ईश्वरेण स्थितरे वर्तते'** अर्थात् हे ऋषिवर, ईश्वर ने यह तीनों लोक तेरी महिमा के गायन के लिए स्थित किए हैं और **'समस्ता वेदाः भवत उपभोगाय ईश्वरेण वहन्ति'** अर्थात् चारों वेद आपके उपभोग (स्वाध्याय के पुण्य द्वारा परमसुख) के लिए ही कहे गए हैं। इसी वाणी का अनुवाद करते हुए कबीर ने भी गुरु की प्रशंसा में कहाः–

"सब धरती कागद करुँ
लेखनी सब बन
सात समद की मसि करुँ
गुरु गुण लिखा न जाए"

अर्थात् यदि सारी पृथिवी कागज बन जाए, संसार के सब समुद्र स्याही बन जाए एवं संसार के सब वनों की लकड़ियाँ काटकर कलम बना ली जाएँ तब भी वेदज्ञ गुरु के बिना परमेश्वर के गुण, रचना एवं लीला का वर्णन असंभव है।

इसी प्रकार समस्त वेदों में गुरु की महिमा कही गई है। ईश्वर ही ऋषि के अंदर प्रकट होकर वेदों का ज्ञान देता है। ईश्वर वेदों में ऋषि को **'स्वयंभू'** कहकर अपने समान दर्जा देता है। अतः ज्ञान प्राप्ति के लिए चारों वेदों ने गुरु की शरण में जाने को कहा है। अतः प्रथम गुरु ईश्वर पश्चात् ऋषिजन हमारे गुरु होते आए हैं।

इस प्रकार गुरु भक्ति की परम्परा को दृढ़ करते हुए ऋग्वेद मंत्र 9/67/31 एवं सामवेद मन्त्र 1298 में कहा,–जो वेदों के ज्ञाता ऋषियों से वेद वाणी को सुनता है– अध्ययन करता है,वही ब्रह्म के आनन्द का रस भोगता ह। पुनः अगले मंत्र में कहा कि जो विद्वानों से वेद विद्या सुनता है उसके घर में शुद्ध घी, दूध, शहद एवं जल इन चार पदार्थों की कमी नहीं होती इत्यादि। अर्थात् यज्ञ करना, वेद–विद्या को सुनना एवं योगाभ्यास करना, ब्रह्मप्राप्ति सहित अनेक शुभ फल वेदों ने कहे है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम उन वेद–विरोधी संतों से वेदों की निंदा सुनते हैं जिन्होंने वेदों का कभी अध्ययन ही नहीं किया अथवा एक, दो चार कुछ एक मंत्रों को रटकर उनका गलत अर्थ किया। गुरू नानक देव साहब ने श्री गुरु बाणी में सच ही कहा है–**'वेद कतेव कहो मत झूठे, झूठा सो जो न विचारे'।** अर्थात् वेद झूठे नहीं है क्योंकि वेद परमेश्वर से निकला ज्ञान है। गुरु महाराज ने स्वयं इस बात को श्री गुरुवाणी में इस प्रकार कहा है– **'वेद ओंकार निरमाये'** अर्थात् वेद ईश्वर से निकला ज्ञान है। अतः श्री गुरु महाराज ने कहा वेद झूठे नहीं हैं झूठा वह है जिसने वेदों का अध्ययन करके वेदों पर विचार विमर्श नहीं किया। अथर्ववेद मंत्र 7/2/1 कहता है–

"अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम्।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणोवोचस्तमिहेह ब्रवः।"

अर्थात् मंत्र का भाव है कि जिसने समाधि द्वारा ईश्वर को जाना है वह निश्चित बुद्धि वाला ऋषि ही इस संसार में समाज को ज्ञान दे, अन्य नहीं। इस भाव के अनेक मंत्र चारों वेदों में भरे पड़े हैं अतः हम जीवन में वेद के ज्ञाता, विद्वानों से ही विद्या प्राप्त करके जीवन को ईश्वर भक्ति में लगाएँ। आज कई संत कहते हैं कि श्रीराम और श्री कृष्ण ने गुरु धारण किए अतः सब प्राणी गुरु धारण करें। वस्तुतः श्री राम एवं श्री कृष्ण महाराज के गुरु वशिष्ठ मुनि एवं संदीपन ऋषि हुए हैं और दोनों ही महान पुरुष, चारों वेदों के ज्ञाता, यज्ञ कराने वाले तथा वेदों में कही अष्टांग योग–विद्या द्वारा समाधि प्राप्त ऋषि कहलाए हैं। अतः आज के प्रायः वह संत जो वेद, यज्ञ एवं योग समाधि के निंदक हैं, इन विद्याओं के विरोधी हैं और इन विद्याओं

को कठिन कहकर छोड़ने का आग्रह करते है, उन्हें गुरु वशिष्ठ आदि पुरातन ऋषियों के पवित्र नामों का इस प्रकार व्याख्यान करना उचित नहीं कहा जा सकता। हमें अपनी सनातन, वैदिक संस्कृति की रक्षा करके देश को पुनः सोने की चिड़िया एवं विश्व गुरु की उपाधि से सुशोभित करना होगा।

दैनिक संध्या मंत्रों के अर्थ

***ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नःप्रचोदयात्।।**

(भूः) जो सब जगत के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयंभू है उस प्राण का वाचक होकर भूः परमेश्वर का नाम है। **(भुवः)** जो सब दुःखों से रहित, जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं इसलिए उस परमेश्वर का नाम भुवः है। **(स्वः)** जो नानाविध जगत में व्यापक होकर सबको धारण करता है इसलिए उस परमेश्वर का नाम स्वः है। **(सवितुः)** जो सब जगत को उत्पन्न करने वाला है। **(देवस्य)** जो सब सुख देता है। **(वरेण्यम्)** स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ है। **(भर्गः)** शुद्ध स्वरूप और पवित्र करने वाला चेतन ब्रह्म स्वरुप है। **(तत्)** उसी परमेश्वर के स्वरुप को हम **(धीमहि)** धारण करें **(यः)** जो जगदीश्वर **(नः)** हमारी **(धियः)** बुद्धियों को **(प्रचोदयात्)** प्रेरणा करे, ज्ञान से भर दे।

अर्थ–

हम सब जगत के प्राणाधार, दुखों का नाश करने वाले, सर्वव्यापक, सुख–स्वरुप, सब जगत को उत्पन्न करने वाले, दिव्य गुणों से युक्त, शुद्ध स्वरुप, अति श्रेष्ठ, स्वीकार करने योग्य, परमेश्वर का ध्यान करते हैं। जो (प्रभु) हमारी बुद्धियों को ज्ञान से प्रकाशित करें।

***विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।**

यद् भद्रन्तन्न आ सुव।।

(यजु० मंत्र 30/3)

हे **(देव)** सब कुछ देने वाले, तथा **(सवितः)** तीनों लोकों को रचने वाले ईश्वर आप हमारी **(विश्वानि)** सब **(दुरितानि)** बुराइयाँ–अविद्या को **(परा सुव)** दूर कर दो **(यद्)** जो–जो **(भद्रम्)** अच्छाइयाँ हैं **(तत्)** वह **(नः)** हमें **(आ सुव)** दे दो।

अर्थ–

हे सब कुछ देने वाले, तथा तीनों लोकों के रचने वाले ईश्वर, आप हमारी सब बुराइयों (अविद्या–काम, क्रोध आदि दोष) को हम से दूर कर दें और जो–जो अच्छाइयाँ हैं (विद्या) वो हमें प्रदान करें।

भावार्थः–

मंत्र में दुरितानि शब्द का अर्थ सब प्रकार के दुष्ट अवगुण, जो हमें दुःख देते हैं, ऐसा है। प्रकृति के तीन गुण रज, तम एवं सत्व, इन्हीं से सृष्टि की रचना होती है और इन्हीं में रज–क्रियाशील कामादि अनेक विकारों की खान है। तम–आलस्य, पुरूषार्थहीन आदि अवगुणों को उत्पन्न करने वाला तथा मनुष्य को दरिद्री एवं अधर्मी बनाने वाला है। तथा सतो गुण–अंहकारादि विकार उत्पन्न करने वाला है। इन्हीं विकारों से दूर होने के लिए मंत्र में प्रार्थना की गई है। दूसरा शब्द भद्रम् है जिसका अर्थ है सब दुःखों का नाश करने वाली विद्या हमें प्राप्त हो, जिससे हमें इस लोक में रहते हुए सब सुख प्राप्त हों तथा साथ ही परलोक का सुख (मोक्ष) भी प्राप्त हो। प्रार्थना में शक्ति है और वेदमंत्रों द्वारा यज्ञ में प्रार्थना तो ईश्वर अवश्य सुनता है। परन्तु केवल प्रार्थना करना ही फलदायक नहीं होता। प्रार्थना, स्तुति एवं उपासना सहित जब हम प्रार्थना के अनुकूल विषय–विकारों को छोड़ने के लिए यज्ञ, योगाभ्यास एवं शुभ कर्मों में भी वृत्ति लगाएँगें और बुराइयों को छोड़ने का कठोर व्रत एवं प्रयत्न भी करेंगे। तभी हम ईश्वर एवं वैदिक शुभ कर्मों का उपदेश करने वाले विद्वान गुरू की कृपा से वेदों में कही भद्रता को प्राप्त कर लेंगे। आज यज्ञहीन वेद विरोधी गुरुओं से भी सावधान रहने की आवश्यकता है।

***हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(युज० मंत्र 13/4)

(हिरण्यगर्भः) हे ज्योति स्वरुप ईश्वर, सबको ज्योति देने वाला, परन्तु स्वयं प्रकाशक **(भूतस्य)** पंच भौतिक पदार्थों से बने संसार के पदार्थों का **(जातः)** प्रसिद्ध **(पतिः)** मालिक **(एकः)** एक **(आसीत्)** था, **(अग्रे)** इस संसार रचना से पहले भी **(समवर्तत)** वर्तमान था, **(सः)** वही **(इमाम्)** इन **(पृथिवीम्)** पृथिवी **(उत)** और **(द्याम्)** द्युलोक को **(दाधार)** धारण कर

रहा है **(कस्मै)** उस सुख एवं आनंद स्वरुप ईश्वर **(देवाय)** देव के लिए **(हविषा)** आहुति, यज्ञ, योगाभ्यास से **(विधेम)** उत्तम भक्ति करें।

अर्थ–

हे ज्योतिस्वरुप ईश्वर, सबको ज्योति देने वाला परन्तु स्वयं प्रकाशक, पंच भौतिक पदार्थों से बने संसार के पदार्थों का प्रसिद्ध मालिक एक था, है और रहेगा, इस संसार रचना से पहले भी वर्तमान था, वही इन पृथिवी और द्युलोक को धारण कर रहा है, उस सुख एवं आनंद स्वरुप ईश्वर, देव के लिए आहुति, यज्ञ एवं योगाभ्यास से उत्तम भक्ति करें।

भावार्थः–

इस मन्त्र में ईश्वर के गुणों का वर्णन है। ईश्वर के अनन्त गुण हैं। जीवात्मा और प्रकृति के गुण की एक सीमा है परन्तु ईश्वर के गुण असीम हैं अर्थात् ईश्वर के गुण गिने जा नहीं सकते। इस मन्त्र में ईश्वर को सब जगत का रचियता **(एकः)** इसके गुण जैसा कोई अन्य ईश्वर नहीं है और **(हिरण्यगर्भः)** जिस परमेश्वर के अन्दर सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाश देने वाले पदार्थ समाए हुए हैं और **(अग्रे)** अर्थात् इस सृष्टि रचना से पहले भी वह था और संसार को रचकर, संसार को स्वयं ईश्वर ने धारण किया हुआ है–संसार का पालन करता है, ऐसे अलौकिक गुण परमेश्वर के इस मन्त्र में कहे गए हैं। यहाँ यह विचार आवश्यक है कि जब ईश्वर, एक सर्वशक्तिमान ने संपूर्ण विश्व को धारण किया हुआ है, सब में समाया हुआ है तो पृथिवी को धारण करने वाले परमेश्वर से, पृथिवी को छीनकर कौन भाग सकता है। अतः कहीं–कहीं कथा सुनने में प्रायः यह आता है कि कोई राक्षस पृथिवी को चटाई की तरह लपेट कर अपने सिर के नीचे तकिया बनाकर लेट गया। और पुनः पृथिवी को छीनने के लिए भगवान उस राक्षस से लड़ने आए। भला ऐसा विचार कोई विद्वान सोच भी कैसे सकता है। और साथ ही उपदेश है कि ऐसे गुणयुक्त, अद्वितीय परमेश्वर की हम यज्ञ एवं योगाभ्यास आदि वैदिक शुभ कर्मों से सदा पूजा करें। ऐसे परमेश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य परमेश्वर की हम पूजा कदापि न करें। ईश्वर सृष्टि से पहले भी था, वर्तमान में भी है और सृष्टि के विनाश होने के पश्चात् भी रहेगा। अतः हम ईश्वर द्वारा रचित पदार्थों की पूजा न करें, ईश्वर की पूजा करें।

***य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यदेवाः।**
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।
(यजु० मन्त्र 25/13)

(यः) जो **(आत्मदा)** आत्म ज्ञान का दान करने वाला है **(बलदाः)** बल का दाता है **(यस्य)** जिस परमेश्वर की **(विश्वे)** सब **(देवाः)** विद्वान **(उपासते)** पूजा करते हैं **(यस्य)** जिसके **(प्रशिषम्)** सत्य, नियम व न्याय को सब विद्वान मानते हैं **(यस्य)** जिस परमेश्वर की **(छाया)** शरण, आश्रय ही **(अमृतम्)** मोक्ष सुख है **(यस्य)** जिसकी शरण में ना जाने से **(मृत्युः)** बार–बार जन्म मृत्यृ रुपी क्लेश प्राप्त होता है **(कस्मै)** उस सुख एवं आनंद स्वरुप ईश्वर **(देवाय)** देव के लिए **(हविषा)** आहुति, यज्ञ, योगाभ्यास से **(विधेम)** उत्तम भक्ति करें।

अर्थः–

जो आत्म ज्ञान का दान करने वाला है, बल का दाता है, जिस परमेश्वर की सब विद्वान पूजा करते है, जिसके सत्य, नियम व न्याय को सब विद्वान मानते हैं, जिस परमेश्वर की शरण, आश्रय ही मोक्ष सुख है, जिसकी शरण में ना जाने से बार–बार जन्म–मृत्यु रुपी क्लेश प्राप्त होता है उस सुख एवं आनंद स्वरुप ईश्वर, देव के लिए आहुति यज्ञ एवं योगाभ्यास से उत्तम भक्ति करें।

भावार्थः–

ईश्वर ने जीव के कल्याण के लिए, यह संसार रचा है। सामवेद मंत्र 1429 का भी यहीं भाव है कि जीवात्मा शरीर धारण करके वेदों में दिए हुए ज्ञान को प्राप्त करके और इस प्रकार पिछले सब कर्मों का नाश करके मोक्ष के सुख को पा सकता है। **"यस्य छाया अमृतम्"**– मन्त्र में कहे इन पदों का भाव है कि वेदानुसार यज्ञ, योगाभ्यास आदि शुभ कर्मों के, द्वारा ईश्वर भक्ति ही ईश्वर की शरण है जिससे **"अमृतम्"** अर्थात मोक्ष सुख प्राप्त होता है। इसके विपरीत वेद विरूद्ध कर्म करना ईश्वर–भक्ति नहीं है और ईश्वर–भक्ति से हीन प्राणी **"मृत्युः"** अविद्याग्रस्त होकर बार–बार जन्म मृत्यु, आदि क्लेश में पड़कर सदा दुखी रहता है। अतः हम उस ईश्वर की यज्ञ एवं योगाभ्यास आदि द्वारा वेदों में कही विशेष भक्ति करें, जिस ईश्वर

ने हमें मानव शरीर देकर रक्षा के लिए समस्त संसार के पदार्थों को बनाया, जिससे जीव इस शरीर से वैदिक शुभ कर्म करता हुआ, मोक्ष सुख को प्राप्त करे। अतः संसार को रचकर, नियम में रखने वाले, इस ईश्वर के अतिरिक्त हम किसी अन्य की पूजा न करें।

***यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।**
य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(यजु० मंत्र 23/3)

(यः) जो ईश्वर (महित्वा) अपने सामर्थ्य द्वारा **(निमिषतः)** पलक झपकने वाले **(प्राणतः)** प्राणी जो **(द्विपदः)** दो पैरों वाले हैं तथा **(चतुष्पदः)** चार पैरों वाले हैं, ऐसे **(अस्य)** इस **(जगतः)** जगत का **(एकः)** एक **(इत्)** ही (राजा) राजा **(बभूव)** है (था और रहेगा) **(यः)** जो **(अस्य)** इन प्राणियों के शरीर की **(ईशे)** रचना करता है–जगत रचना करता है, ऐसे **(कस्मै)** आनन्दस्वरुप **(देवाय)** सब दिव्य पदार्थ आदि देने वाले परमेश्वर की हम **(हविषा)** यज्ञ एवं योगाभ्यास आदि द्वारा **(विधेम)** विशेष भक्ति करें।

अर्थः–

जो ईश्वर अपने सामर्थ्य द्वारा पलक झपकने वाले प्राणी–जो दो पैरों वाले हैं तथा चार पैरों वाले हैं, ऐसे इस जगत का एक ही राजा है, जो इन प्राणियों के शरीर की रचना करता है– जगत रचना करता है, ऐसे आनन्दस्वरुप, सब दिव्य पदार्थ आदि देने वाले परमेश्वर की हम यज्ञ एवं योगाभ्यास आदि द्वारा विशेष भक्ति करें।

भावार्थः–

मन्त्र में ईश्वर के गुणों का वर्णन है। जिस परमेश्वर ने अपनी सामर्थ्य से आँख झपकने वाले, दो पैरों वाले मनुष्यादि और चार पैरों वाले, गौ, सिंह आदि शरीरों की रचना की और इस प्रकार हम सब प्राणियों के शरीरों की रचना करने वाला यह परमेश्वर (एकः) अर्थात् एक ही है। इस जैसी रचना करने वाला और कोई दूसरा परमेश्वर नहीं है। अतः इसी गुणयुक्त, एक परमेश्वर की हम यज्ञ, योगाभ्यास एवं वेदों में कहे शुभ कर्म करके पूजा करें। उदाहरणार्थ यदि हम कहें कि अमुक देवी जगत जननी है अथवा किसी अन्य देवता ने संसार रचा है और हम उसकी भी पूजा करें तो यह

वेद–विरूद्ध, मिथ्यावाद हो जाएगा। अतः हम संपूर्ण विश्व के रचयिता के वेदानुसार गुणगान करके ही उसकी पूजा करें।

***येन द्यौरूग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्व स्तभितं येन नाकः।**
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(यजु० मन्त्र 32/6)

(येन) जिस परमेश्वर के द्वारा **(उग्रा)** उग्र रूप वाले **(द्यौ)** द्यौ लोक **(च)** तथा **(पृथिवी)** लोकों को **(दृढा)** दृढ़ किया हुआ है **(येन)** और जिस परमेश्वर ने **(स्व)** आनन्द **(स्तभितं)** धारण किया हुआ और **(येन)** जिसने **(नाकः)** मोक्ष (दुःख रहित मोक्ष) को धारण किया हुआ है **(यः)** जो (अन्तरिक्षे) आकाश में **(रजसः)** लोक लोकान्तरों को **(विमानः)** विशेष प्रकार से रचता है **(कस्मै)** उस सुख एवं आनंद स्वरुप ईश्वर **(देवाय)** देव के लिए **(हविषा)** आहुति, यज्ञ, योगाभ्यास से **(विधेम)** उत्तम भक्ति करें।

अर्थः–

जिस परमेश्वर के द्वारा उग्र रुप वाले द्यौ लोक तथा पृथिवी लोकों को दृढ़ किया हुआ है और जिस परमेश्वर ने आनन्द धारण किया हुआ है और जिसने मोक्ष (दुःखरहित मोक्ष) को धारण किया हुआ है, जो आकाश में लोक – लोकान्तरों को विशेष प्रकार से रचता है, उस सुख एवं आनन्द स्वरुप ईश्वर, देव के लिए आहुति, यज्ञ एवं योगाभ्यास से उत्तम भक्ति करें।

भावार्थः–

ईश्वर कैसा है, इस विषय में उपदेश करते हुए मन्त्र में कहा कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे आदि लोक हमें प्रकाश देते हैं और यह पृथिवी जिस पर हम रहते हैं, इन सबको ईश्वर ने दृढ़ किया हुआ अर्थात् सभी लोकों को ईश्वर ने अन्तरिक्ष में धारण कियां हुआ है, जिससे कोई भी लोक टूट–फूटकर गिर नहीं जाता, अपनी कक्षा में सदा नियम से घूमता रहता है। ईश्वर में ही मोक्ष एवं आनन्द सुख वर्तमान है। एवं ऐसे सुखदाता ईश्वर की जब हम वेदानुसार यज्ञ–योगाभ्यास आदि शुभ कर्मों से भक्ति करते हैं तो हमें निश्चित रूप से ही सुख एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है और दुःखों का नाश होता है। इसके विपरीत जब हम किसी अन्य को ईश्वर मानकर उसकी पूजा करते हैं तब हमें सदा दुःख उठाने पड़ते हैं और मोक्ष तो हो कैसे सकता है? क्योंकि इस

ईश्वर के समान कोई अन्य ईश्वर हो कैसे सकता है, जिसमें अनन्त सुख अथवा मोक्ष का सुख हो।

***प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।**
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।

(ऋग्वेद मन्त्र 10/121/10)

(प्रजापते) सब प्रजा के पालक–स्वामी **(त्वत्)** तेरे से **(अन्य)** अलग **(ता)** उन **(एतानि)** इन **(विश्वा)** सब **(जातानि)** उत्पन्न पदार्थों को **(न)** नहीं **(परि)** परिभव **(बभूव)** करता है। **(यत्)** जिस–जिस **(कामः)** कामना से हम **(ते)** तेरे **(जुहुमः)** लिए अपने भाव समर्पित करें **(तत्)** वह **(नः)** हमारे लिए **(अस्तु)** पूर्ण हो जाएँ और **(वयम्)** हम **(रयीणाम्)** धनों के **(पतयः)** स्वामी (स्याम) होवें।

अर्थः–

सब प्रजा के पालक–स्वामी, तेरे से अलग, उन–इन सब उत्पन्न पदार्थों को नहीं परिभव करता है। जिस–जिस कामना से हम तेरे लिए अपने भाव समर्पित करें, वह हमारे लिए पूर्ण हो जाएँ और हम धनों के स्वामी होवें।

भावार्थः–

जो कुछ भी पदार्थ सृष्टि में पहले उत्पन्न हुआ अथवा अब वर्तमान समय में उत्पन्न हुआ है, उन सबका स्वामी केवल एक ईश्वर और इस जैसा कोई अन्य ईश्वर, न था, न है और न होगा। अतः वेदानुसार जब हम इस एक ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करते हैं, वह निश्चित ही पूर्ण होती है और जीव धन एवं सब सुखों को प्राप्त कर लेता है। जब सोना–चाँदी, अन्न, सूर्य, चन्द्रमा, शरीर, सुख, मोक्ष आदि अनन्त पदार्थों का एक ही ईश्वर मालिक है और ऐसे ईश्वर से, इन सब पदार्थों को कोई और छीन नहीं सकता कि जैसे कोई बलशाली राजा किसी निर्बल राजा के राज्य को छीन लेता है, ईश्वर के संदर्भ में ऐसा कभी हो नहीं सकता। तो जब इस ईश्वर को छोड़कर, मनघड़न्त किसी अन्य ईश्वर की पूजा करेंगे जिसके पास इस एक ईश्वर जैसे पदार्थ, नाम मात्र को भी नहीं हैं तब हमारी पूजा–पाठ निश्चित ही व्यर्थ जाएगी और हम दुःखों के सागर में डूबते रहेंगे। अतः हम वेद में वर्णित, केवल एक, सर्वसमर्थ, सृष्टि रचियता ईश्वर

की पूजा करें। अन्य कोई इस जैसा ईश्वर नहीं है।

***स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।**
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त।।

(यजुर्वेद मन्त्र 32/10)

(यत्र) जिस **(तृतीये)** तीसरे (जीव वा प्रकृति से अलग तीसरे तत्त्व) **(धाम)** परमात्मा में **(अमृतम्)** दुःख रहित, मोक्ष सुख को **(आनशानाः)** प्राप्त करने के लिए **(देवाः)** वेदों के ज्ञाता, विद्वान **(अध्यैरयन्त)** सर्वत्र अपनी इच्छा से विचरण करते हैं **(सः)** वह परमेश्वर **(नः)** हमारा **(बन्धुः)** भ्राता के समान है। **(जनिता)** सब जगत को उत्पन्न करने वाला है **(सः)** वह **(विधाता)** कर्म फल का विधान करने वाला है। **(विश्वा)** सब **(भुवनानि)** भुवनों–लोकों को **(वेद)** जानता है।

अर्थः–

जिस तीसरे (जीव वा प्रकृति से अलग तीसरे तत्त्व) परमात्मा में, दुःख रहित, मोक्ष सुख को प्राप्त करने के लिए, वेदों के ज्ञाता, विद्वान, सर्वत्र अपनी इच्छा से विचरण करते हैं, वह परमेश्वर हमारा भ्राता के समान है। सब जगत को उत्पन्न करने वाला है, वह कर्म फल का विधान करने वाला है। सब भुवनों–लोकों को जानता है।

भावार्थः–

वेदों में जीव, प्रकृति एवं परमात्मा, यह तीनों तत्त्व, एक–दूसरे से भिन्न परन्तु अनादि एवं अविनाशी हैं। प्रकृति में विकार है एवं जीवात्मा शुद्ध होते हुए भी, कर्म–बन्धन में फँसकर, अपने स्वरुप को भूल जाता है और अज्ञानवश अपने को अशुद्ध एवं काम–क्रोध, लोभ आदि अनेक विकारों में फंसा हुआ मानता है। मन्त्र का यह भाव है कि केवल तीसरा तत्त्व परमात्मा ही शुद्ध, चेतन एवं अविनाशी तत्त्व है। इसी की उपासना करके, विद्वान योगी मोक्ष सुख को प्राप्त करता है। यही परमेश्वर सबके मन की एवं सबको जानने वाला है। यही परमेश्वर जगत की रचना करने वाला है। जिस प्रकार योगीजन इस एक ईश्वर की यज्ञ, वेदाध्ययन एवं योगाभ्यास आदि द्वारा पूजा करते हैं और ईश्वर उनके हृदय में प्रकट होता है तथा योगीजन मोक्ष का सुख प्राप्त करते हैं, तो इसी ईश्वर को सब प्राणी सत्य जानें और यज्ञादि द्वारा इसकी ही पूजा करें।

*अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम।।

(यजुर्वेद मन्त्र 40/16)

(देव) हे सब सुखों को देने वाले **(अग्ने)** परमात्मा **(ते)** आपकी **(भूयिष्ठाम्)** बहुत अधिक **(नमः)** नम्रता व सत्कार सहित **(उक्तिम)** प्रशंसा **(विधेम)** करते हैं। **(विद्वान)** हे सकल विद्या के ज्ञाता **(अस्मत्)** हम से **(जुहुराणम्)** कुटिलता तथा **(एनः)** पाप कर्म को **(युयोधि)** दूर करें। **(अस्मान् राये)** हमें धन प्राप्ति के लिए **(सुपथा)** अच्छे मार्ग से **(विश्वानि)** सब **(वयुनानि)** श्रेष्ठ ज्ञान **(नय)** प्राप्त कराइए।

अर्थः—

हे, सब सुखों को देने वाले परमात्मा! आपकी बहुत अधिक नम्रता वा सत्कार सहित प्रशंसा करते हैं। हे सकल विद्या के ज्ञाता, हमसे कुटिलता तथा पाप कर्म को दूर करें। हमें धन प्राप्ति के लिए, अच्छे मार्ग से, सब श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कराइए।

भावार्थः—

श्रेय और प्रेय अर्थात् अच्छा और बुरा, यह दो प्रकार का मार्ग जीवन में अपनाने के लिए, सामने आता है। बुद्धिमान पुरुष धर्मयुक्त, अच्छे मार्ग पर ही चलते हैं। परन्तु धर्म–अधर्म, अच्छा या बुरा मार्ग जानने के लिए, महापुरुषों (वेद विद्वान) की शरण में जाकर वेद विद्या को सुनना एवं यज्ञादि कर्म करना परमावश्यक है। ऐसा करने पर ही हृदय में परमेश्वर के सत्य गुण प्रकट होते हैं, बुद्धि शुद्ध होती है और मन के विकार नष्ट होते हैं। इसी वैदिक मार्ग को अपनाने से मन की बुराइयाँ दूर होती हैं और चित्त की वृत्ति एकाग्र होती है। तब हम शुद्ध हृदय से एक ही परमेश्वर की यज्ञादि द्वारा सच्ची पूजा करते हैं। ऐसी पूजा द्वारा ही परमेश्वर प्रसन्न होकर पूर्णतः हमें धर्म पथ पर लगा देता है, पाप कर्म से हम छूट जाते हैं और ईश्वर कृपा से हमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, इन चारों पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है। अतः हम वैदिक आचरण द्वारा वेदों में कहे एक ही ईश्वर की भक्ति करें क्योंकि उसके समान कोई अन्य ईश्वर नहीं है।

अग्निहोत्र–हवन करने की विधि

इन 3 मन्त्रों से तीन आचमन करें:'

1. ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।

भावार्थ:–

हे अमृतस्वरुप परमेश्वर! आप हमारे बिछौने के समान हैं अर्थात् बिछौने पर लेट कर हमें सुख प्राप्त होता है, यही पृथ्वी जिसके कण–कण में ईश्वर है, इसपर हम मकान–दुकान इत्यादि बनाते हैं। और सुखपूर्वक रहते हैं, यह सब ईश्वर की देन है।

2. ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा।

भावार्थ:–

हे प्रभु! आप हमारे ओढ़ने के समान हो। अर्थात् जिस प्रकार चादर अथवा सर्दी में रजाई ओढ़कर हम सुखपूर्वक सोते हैं उसी प्रकार अन्तरिक्ष के कण–कण में पुनः सूर्य–चन्द्रमा और त्रिसरेणु रुपी आकाश के कण–कण में आप समाए हुए हो जिससे द्युलोक स्थिर है और हम प्राणियों को जीवन व्यापन के लिए ऊर्जा देता है। फलस्वरुप हम सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

3. ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम् स्वाहा।

भावार्थ:–

हे सबके रक्षक परमेश्वर! मैं परिश्रम द्वारा सच्चाई से प्राप्त धन और यश ग्रहण करुँ, मेहनत द्वारा कमाया धन, यज्ञादि शुभ कर्मों में लगाकर श्रीमान् बनूँ एवं दान आदि क्रिया का त्याग करके केवल धनवान न बनूँ।

अंग स्पर्ष करने के मन्त्र

1. ओ३म् वाड्.मऽआस्येऽस्त्,– इस मन्त्र से दाहिने हाथ की मध्यम और अनामिका से मुख को जल स्पर्श करे।

भावार्थः–

हे परमात्मा! मेरे मुख में वाक् शक्ति सदा बनी रहे। अर्थात् मेरी वाणी में ओज और तेज सदा बना रहे।

2. ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु– इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्रों को स्पर्श करते हैं।

भावार्थः–

हे ईश्वर! मेरी दोनों नासिका के छिद्रों में प्राण शक्ति का संचार बना रहे।

3. ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु– इस मन्त्र से दोनों आँखों को जल द्वारा स्पर्श करें।

भावार्थः–

हे ईश्वर! मेरी दोनों आँखों में दर्शन करने की शक्ति सदा बनी रहे।

4. ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्त,– इस मन्त्र द्वारा दोनों कानों का स्पर्श करें

भावार्थः–

हे प्रभु! मेरे दोनों कानों में सुनने की शक्ति सदा बनी रहे।

5. ओम् बाह्वोर्मे बलमस्तु– इस मन्त्र द्वारा दोनों बाहों को स्पर्श करें।

भावार्थः–

हे प्रभु! मेरे दोनों भुजाओं में बल सदा बना रहे।

6. ओ३म् ऊर्वोर्मेऽ ओजोऽस्तु– इस मन्त्र से दोनों जंघाओं का स्पर्श करें।

भावार्थः–

हे प्रभु! मेरी दोनों जंघाओं में ओज बना रहे। अर्थात् परिश्रम करने की शक्ति बनी रहे। मैं आलस्य में पड़ा, परिश्रम करने से मन न चुराऊँ।

7. ओ३म् अरिश्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु– इस मन्त्र से समस्त शरीर के ऊपर जल छिड़कें।

भावार्थः–

हे ईश्वर! मेरा शरीर रोगरहित हो और शरीर के अंग सुदृढ़ हों।

अग्न्याधान मन्त्र (अग्नि आधान मन्त्र)

इस नीचे दिए मन्त्र से दीयासलाई आदि द्वारा कपूर अथवा घी में डुबोई रूई को आग लगा कर हवन कुण्ड में रखें।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः

हे प्रभु तू (भूः) प्राण स्वरूप, (भुवः) दुःखों को दूर करने वाला (स्वः) आनन्द स्वरूप है।

ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे
(यजु० अ० 3, मं० 5)

(ओ३म्) हे परमेश्वर मैं **(अन्नाद्याय)** भक्षण योग्य अन्न के लिए **(भूम्ना)** व्यापक **(द्यौः इव)** द्यौ लोक के समान **(वरिम्णा)** श्रेष्ठ गुण युक्त **(पृथिवी इव)** पृथिवी की तरह अग्नि को **(ते)** तेरे इस प्रत्यक्ष एवं **(तस्याः)** उस अप्रत्यक्ष अन्तरिक्ष लोक में **(देवयजनि)** जहाँ विद्वान यज्ञ करते है उस **(पृथिवी)** पृथिवी को **(पृष्ठे)** पीठ पर **(भूः)** भूमि **(भुवः)** अन्तरिक्ष **(स्वः)** द्युलोक इन तीनों लोकों में **(अन्नादम्)** अन्न का भक्षण करने वाली **(अग्निम्)** अग्नि को **(आदधे)** स्थापित करता हूँ।

अर्थः–

हे परमेश्वर मैं भक्षण योग्य अन्न के लिए व्यापक द्यौ लोक के समान श्रेष्ठ गुण युक्त पृथिवी की तरह तेरे इस प्रत्यक्ष एवं उस अप्रत्यक्ष अन्तरिक्ष लोक में जहाँ विद्वान यज्ञ करते हैं उस पृथिवी की पीठ पर भूमि, अन्तरिक्ष, द्युलोक इन तीनों लोकों में अन्न का भक्षण करने वाली अग्नि को स्थापित करता हूँ।

भावार्थः–

संसार में तीन प्रकार की अग्नि है। बादलों में गर्जने वाली विद्युत

(अग्नि), पृथिवी पर जलने वाली भौतिक अग्नि और द्युलोक में सूर्यादि ग्रहों में अग्नि। ईश्वर ने तीनों लोकों में स्थित इस अग्नि को प्रयोग में लाकर मानव को सुख देने की प्रेरणा दी है अर्थात् इस अग्नि से हम सुख प्राप्त करें। यह अग्नि तीनों लोकों में व्याप्त है परन्तु लाभ यह तब देती है जब इसे प्रकट किया जाए। जैसे पानी, हवा, मनुष्य के शरीर आदि सबमें अग्नि विद्यमान है तभी जंगल में पेड़ आपस में टकराते हैं, तब छिपी हुई अग्नि प्रकट हो जाती है, चिंगारियाँ निकलती हैं और जंगल में आग लग जाती है। दोनों हाथों को रगड़ने से विद्युत (अग्नि) उत्पन्न होती है। भोजन इत्यादि बनाने में अग्नि का प्रयोग होता है। दूसरा विद्युत रूप में अग्नि प्रकट करके हम ऊर्जा प्राप्त करते हैं। यह सब वेदों में ईश्वर की देन है। पृथिवी जो दिखाई देती है और पृथिवी का जो भाग नहीं दिखाई देता, इस पर सदा विद्वान लोग यज्ञ करते रहे हैं इसी कारण इस भूमि को वेद ने देवयजनी भूमि कहा है अथार्त् इस भूमि पर विद्वान लोग यज्ञ करते हैं। अतः हम इस मन्त्र को उच्चारण करके वेदी अथवा हवनकुंड में कपूर और समिधा आदि रखकर अग्नि प्रकट करें और हवन करें जिससे हम भी असुर न कहलाकर विद्वान कहलाएँ और मन्त्र में कहे इस अलौकिक शब्द देवयजनी को सिद्ध करके ईश्वर को प्रसन्न करें। तभी हमारा कल्याण निश्चित होगा।

यजुर्वेद मन्त्र 3/4 और ऐसे ही वेदों के अनेक मंत्रों में ईश्वर का दिया ज्ञान है कि जब हम जलती अग्नि में समिधाएँ और आहुतियाँ डालते हैं तो अग्नि में डाले पदार्थ सूक्ष्म रूप धारण करके चहुँ ओर वायु मण्डल में पहुँचकर वायु की शुद्धि, वातावरण की शुद्धि एवं समय पर वर्षा आदि अनेक सुख प्रदान करते हैं। अतः हम सदा ईश्वर की आज्ञा में रहकर यज्ञ–हवन आदि शुभ कर्म करके तीनों लोकों को शुद्ध रखें और प्राणियों को सुख दें।

(अग्नि को प्रदीप्त करने का मन्त्र)

छोटी–छोटी समिधाएँ लगाकर अग्नि को प्रदीप्त करें।

***ओ३म् उदबुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते संसृजेथामयं च।**
अस्मिन्त्सधस्थेऽ अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत।।

(यजु० अ० 15, मं० 54)

(अग्ने) हे अग्ने **(त्वम्)** तुम **(उद्बुध्यस्व)** उठो, जागो **(प्रतिजागृहि)** सदा जागती– सचेत रह **(त्वम्)** तू **(च)** और **(अयम्)** यह यजमान **(इष्टापूर्त्ते)** यज्ञादि शुभ कर्मों को **(संसृजेथाम्)** सब मिलकर सिद्ध करो।

(अस्मिन्) इस **(सधस्थे)** मिलकर बैठने के स्थान यज्ञ में **(अधि)** और **(उत्तरस्मिन्)** इससे भी श्रेष्ठ यज्ञ भूमि में **(विश्वे)** सब **(देवा)**. विद्वान **(च)** और **(यजमानः)** यजमान **(सीदत)** बैठें एवं यज्ञ करें।

अर्थः–

हे अग्ने तुम उठो, जागो, सदा जागती, सचेत रह, तू और यह यजमान यज्ञादि शुभ कर्मों को सब मिलकर सिद्ध करो। इस मिलकर बैठने के स्थान, यज्ञ में और इससे भी श्रेष्ठ यज्ञभूमि में सब विद्वान और यजमान बैठें एवं यज्ञ करें।

भावार्थः–

मन्त्र में अग्नि प्रदीप्त करके, सब नर–नारी, छोटे–बड़ों द्वारा यज्ञ करने की आज्ञा है। मनुस्मृति में कहा–"**अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः**" (2/153) अर्थात् जिसको वेद–विद्या का ज्ञान नहीं है वह बालक के समान है, चाहे वह सौ वर्ष की आयु का हो और जिसको वेदमन्त्रों का ज्ञान है, चाहे वह छोटा ही हो, वह विद्वान है और पिता के समान है। अतः हम यज्ञ कर्म में परिवार सहित सम्मिलित होकर सदा वेदमन्त्रों की व्याख्या, विद्वानों से सुनते रहें, जिससे हम मूर्ख न रह जाएं। आज प्रायः वेद–विद्या का ज्ञान न होने के कारण ही मूर्ख सन्तों ने भोली जनता को बहका रखा है। मन्त्र का भाव है कि जिस प्रकार अग्नि सब पदार्थों में है परन्तु उसे प्रकट करने के लिए, दीयासलाई अथवा अन्य उपायों की आवश्यकता होती है, तब अग्नि '**उद्बुध्यस्व**' जाग उठती है, प्रकट हो जाती है और अग्नि को प्रयोग में लाकर प्राणी सुख प्राप्त करता है। यही बात बिजली पैदा करने अथवा सूर्य की ऊर्जा से सोलर लैम्प इत्यादि का सुख प्राप्त करने में लागू होती है। जिस प्रकार अग्नि को पुरूषार्थ से प्रकट किया जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक नर–नारी पुरूषार्थ द्वारा काम–क्रोधादि विषय सुख से शीघ्र जागें और वेद–विद्या, यज्ञ, एवं योगाभ्यास आदि विद्या को आचरण में लाकर विषय–विकारों से सचेत रहें। यदि हम यज्ञादि शुभ कर्म नहीं करेंगे तब

अविद्या ग्रस्त होकर वेद–विरुद्ध पूजा को भी हम सत्य मानकर विषय–विकारों में पड़े रहेंगे। अतः **'अस्मिन्'** इन तीनों लोकों और **'उत्तरस्मिन'** परलोक में भी (दूसरे जन्म में भी) **'इश्टापूर्त्ते'** अर्थात, देवपूजा, संगतिकरण, दान द्वारा ईश्वर की पूजा, सत्संग आदि से हम इस लोक और परलोक के सुखों को सिद्ध करें। विद्वान और यजमान तथा गृहस्थ के सब नर–नारी यज्ञादि शुभ कर्मों का कभी त्याग न करें। तभी सत्य, ज्ञान एवं ईश्वर हमारे हृदय में प्रकट होगा।

समिदाधान मन्त्राः

समिधाओं में अग्नि प्रकट होने के पश्चात् आम,चन्दन, शीशम आदि किसी की भी तीन समिधाएँ घी में डुबो कर एक–एक समिधा नीचे लिखे मंत्र के उच्चारण के साथ अग्नि में अर्पित करें:–

***ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे इंद न मम।**

हे **(जातवेदः)** सब पदार्थों में विद्यमान अग्ने! **(अयम्)** यह **(इध्म)** समिधा रूपी ईंधन **(ते)** तेरी **(आत्मा)** आत्मा है। **(तेन)** समिधा के द्वारा **(इध्यस्व)** प्रदीप्त हो **(च)** और **(वर्धस्व)** बढ़ो **(इह)** यहाँ संसार में **(अस्मान्)** हमें भी **(वर्धय)** बढ़ा। **(प्रजया)** हमारे परिवार में बाल–बच्चे उन्नत हों **(पशुभिः)** घर व देश में दुधारु आदि पशु बढ़ें **(ब्रह्मवर्चसेन)** घर,, समाज, देश एवं समस्त संसार में ब्रह्म का तेज बढ़े तथा **(अन्नाद्येन)** अन्न तथा अन्य भी सभी पदार्थ बढ़ें और शुभ कामनाएँ **(समेधय)** समृद्ध हों **(स्वाहा)** यह यज्ञ मेरी सत्य क्रिया है।

(इदम्) यह मेरा सब कुछ एवं यह आहुति **(जातवेदसे)** सब में विद्यमान **(अग्नये)** ईश्वर के लिए है। **(इदं)** यह **(मम)** मेरे लिए **(न)** नहीं है।

अर्थः–

हे सब पदार्थों में विद्यमान अग्ने! यह समिधा रुपी ईंधन तेरी आत्मा है। समिधा के द्वारा प्रदीप्त हो और बढ़ो, यहाँ संसार में हमें भी बढ़ा, हमारे परिवार में बाल–बच्चे उन्नत हों, घर व देश में दुधारु आदि पशु बढ़ें, घर, समाज, देश एवं समस्त संसार में ब्रह्म का तेज बढ़े तथा अन्न व अन्य भी सभी पदार्थ बढ़ें और शुभ कामनाएँ समृद्ध हों, यह यज्ञ मेरी सत्य क्रिया है। यह मेरा सब कुछ एवं यह आहुति सब में विद्यमान ईश्वर के लिए है, यह मेरे लिए नहीं है।

भावार्थः–

जलती हुई–प्रकट हुई अग्नि की आत्मा समिधाएँ हैं। अर्थात् जब तक जलती अग्नि में समिधाएँ डालते रहेंगे तब तक अग्नि अपनी लपटों सहित दिखाई देती रहेगी। और जब समिधाएँ डालना बन्द हो जाएँगी तब अग्नि लोप हो जाएगी। अर्थात् हवन कुण्ड में जलती अग्नि में घृत एवं समिधा डालने से अग्नि और बढ़ती जाती है उसी प्रकार हे प्रभु! हम अपने जीवन में एक–एक आहुति की तरह यज्ञ, स्वाध्याय और वैदिक शुभ कर्मों को करते हुए दिन–प्रतिदिन एक–एक आहुति के समान एक–एक करके अधिक से अधिक गुणों को धारण करते रहें और उन गुणों एवं पुण्यों द्वारा जलती अग्नि जैसे बढ़ रही है वैसे ही हमारा जीवन धन–धान्य, सुख–शांति, दीर्घायु, सुख–सम्पदा अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष पाकर बढ़े।

***ओम् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।**
आस्मिन् हव्या जुहोतन।।

(यजूर्वेद मन्त्र 3/1)

(अग्निम्) अग्नि को **(समिधा)** समिधा के द्वारा **(दुवस्यत)** बढ़ाआ **(अतिथिम्)** अतिथि के समान इस अग्नि को **(धृतैः)** शुद्ध घी के द्वारा **(बोधयत)** जागृत करो **(आस्मिन्)** चारों तरफ से इसमें **(हव्या)** हव्य पदार्थ **(जुहोतन)** होम करो अर्थात् जलती अग्नि में हवन सामग्री इत्यादि पदार्थ डालो **(इदम्)** यह सब **(अग्नये)** अग्नि के लिए हैं **(इदम्)** यह **(न)** नहीं हैं **(मम)** मेरे लिए।

अर्थ :–

अग्नि को समिधा के द्वारा बढ़ाओ, अतिथि के समान इस अग्नि को, शुद्ध घी के द्वारा जागृत करो। चारों तरफ से इसमें हव्य पदार्थ होम करो अर्थात् जलती अग्नि में हवन सामग्री इत्यादि पदार्थ डालो। यह सब अग्नि के लिए हैं, यह मेरे लिए नहीं है।

भावार्थ :–

मन्त्र में ईश्वर आज्ञा देता है कि हे बुद्धिमान नर–नारियों, शुद्ध, सूखी आम इत्यादि की समिधाओं तथा शुद्ध घी आदि पदार्थों से वेदी अथवा हवन–कुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त करो। क्योंकि जलती हुई अग्नि में ही घी तथा हवन सामग्री आदि पदार्थों की आहुतियाँ डाली जाती हैं। बुझी हुई अग्नि में आहुतियाँ नहीं डाली जातीं। वेदों के अध्ययन द्वारा पुरातन ऋषियों ने भी यह ज्ञान दिया है कि जलती अग्नि में जब पदार्थ डाले जाते हैं तब अग्नि उनको सूक्ष्म रूप (अणु आदि) में विभाजित करके वायु मण्डल में पहुँचा देती है और वह सब पदार्थ मानव जाति के लिए वायु, जल आदि पदार्थ शुद्ध करते हैं। समय पर वर्षा करते हैं अन्न को कीटाणु रहित करते हैं। यज्ञ करने वालों को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थों को देते हैं। अतः हम सब प्राणियों को ईश्वर की आज्ञा मानकर नित्य हवन–यज्ञ करना चाहिए। दूसरा इस मन्त्र में अग्नि को अतिथि के समान कहा है। घर में आए अतिथि को भी हम घी, अन्न, जल, दूध आदि कई पदार्थों से भोजन आदि देकर, उसकी सेवा करते हैं। सामवेद मन्त्र 5 में भी इस अग्नि को **"मित्रम् इव प्रियम्"** मित्र के समान प्रिय तथा **"अतिथिम्"** अतिथि कहा है। सच्चा मित्र वही होता है जो हमारे दुःखों को दूर करता है। चारों वेदों में प्रमाण है कि यदि हम नित्य वेदमन्त्रों से ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना आदि करते हैं तो हमारे सभी दुःखों का नाश हो जाता है। अतः वेदी अथवा हवन कुण्ड में प्रदीप्त की हुई अग्नि, जिसमें हम आहुतियाँ डालते हैं, ईश्वर ने उसे हमारा, विद्वान अतिथि के समान सच्चा मित्र कहा है। अतः हम इस भौतिक अग्नि रूपी मित्र को नित्य प्रदीप्त करके, हवन–यज्ञ करें। तभी सामवेद मन्त्र 6 में स्पष्ट कहा है कि नित्य हवन–यज्ञ करने से मनुष्य के सब दुःख एवं शत्रु नाश होते हैं। अतः हम विद्वान अतिथि एवं भौतिक अग्नि, दोनों से नित्य लाभ लें। इस मन्त्र और आगे के मन्त्रों में यह भी अति ज्ञानवर्द्धक ज्ञान है कि यह पदार्थ या शरीर तक, यह सब ईश्वर के हैं यहाँ

हमारा कुछ नहीं है, इस भावना से जीने का आनन्द ही कुछ और है।

***"ओ३म् सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन।**
अग्नये जातवेदसे स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे–
इदम् न मम।।"

(यजुर्वेद 3/2)

(सुसमिद्धाय) अच्छी तरह से प्रदीप्त **(शोचिषे)** शुद्ध **(जातवेदसे)** संसार के सभी उत्पन्न हुए पदार्थों में रहने वाले **(अग्नये)** अग्नि में **(तीव्रम्)** तीक्ष्ण स्वभाव के **(घृतम्)** घी को **(जुहोतन)** होम करो **(इदम्)** यह **(जातवेदसे)** जो अग्नि सब पदार्थों में है उस **(अग्नये)** अग्नि के लिए है। **(इदम्)** यह **(न मम)** मेरे लिये नहीं है।

अर्थ :–

अच्छी तरह से प्रदीप्त, शुद्ध संसार के सभी उत्पन्न हुए पदार्थों में रहने वाले, अग्नि में, तीक्ष्ण स्वभाव के घी को होम करो, यह जो अग्नि सब पदार्थों में है, उस अग्नि के लिए है। यह मेरे लिए नहीं है।

भावार्थ :–

'शोचिषे' शब्द का भाव है कि अग्नि स्वयं शुद्ध पदार्थ है। फलस्वरुप ही अग्नि सब पदार्थों को शुद्ध करता है। इसलिए इस मंत्र में भी ईश्वर आज्ञा है कि हम अच्छी तरह से प्रदीप्त की हुई अग्नि में घी इत्यादि पदार्थों की वेद मंत्रों से नित्य आहुति देकर अपने घर एवं संसार के जल, वायु, अन्न इत्यादि सब पदार्थों को शुद्ध करें तथा सदा सुखी रहें। बिना हवन–यज्ञ किए संसार के सब पदार्थ अशुभ कहे गये हैं। हम अशुद्ध भोजन करके अशुद्ध बुद्धि न बनाएँ। अशुद्ध बुद्धि के कारण ही आज प्रायः हमारे तथा हमारी सन्तानों के विचार अशुद्ध हैं, जो कि घोर दुःख का कारण है।

***ओ३म तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।**
बृहच्छोचा यविष्ठय स्वाहा।। इदमग्नयेऽङ्गिरसे–
इदं न मम।।

(यजुर्वेद 3/3)

यह अग्नि **(अङ्गिरः)** सुख प्राप्त कराने वाला **(यविष्ठ्य)** पदार्थों को अलग–अलग करने की सामर्थ्य रखने वाला **(बृहत्)** महान है। हे अग्नि **(त्वा)** तेरा **(शोच)** प्रकाश करने का गुण है ऐसे **(तम्)** तुझ अग्नि को हम **(समिद्भिः)** समिधा द्वारा और **(घृतेन)** शुद्ध घी द्वारा **(वर्द्धयामसि)** बढ़ाते हैं **(इदम्)** यह **(जातवेदसे)** जो अग्नि सब पदार्थों में है उस **(अग्नये)** अग्नि के लिए है। **(इदम्)** यह **(न मम)** मेरे लिए नहीं है।

अर्थ :–

यह अग्नि सुख प्राप्त कराने वाला, पदार्थों को अलग–अलग करने की सामर्थ्य रखने वाला महान है। हे अग्नि, तेरा प्रकाश करने का गुण है, ऐसे तुझ अग्नि को हम समिधा द्वारा और शुद्ध घी द्वारा बढ़ाते हैं। यह जो अग्नि सब पदार्थों में है, उस अग्नि के लिए हैं, यह मेरे लिए नहीं है।

भावार्थ :–

ईश्वर ने पिछले मंत्रों में भी अग्नि को समिधा एवं घी के द्वारा बढ़ाने का उपदेश किया है। ऐसा ही उपदेश इस मंत्र में भी किया है। अतः हम ईश्वर आज्ञा का पालन करते हुए नित्य हवन यज्ञ करके पृथिवी के सब पदार्थ एवं अपने अन्तः करण आदि को शुद्ध करें। हम नित्य भोजन करते हैं, श्वास लेते हैं, जल पीते हैं, आदि–आदि। अतः नित्य अग्नि में होम करके हम सब पदार्थों को पहले शुद्ध करें, तब ही ग्रहण करें। तभी हमारी बुद्धि शुद्ध होगी और फलस्वरुप ही हमारे कर्म शुभ होंगे।

जल–सिंचन

नीचे लिखे मंत्रों द्वारा अंजलि में जल लेकर वेदी–हवन कुन्ड के पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा सब दिशाओं में जल छिड़कें।

*ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व–*इससे पूर्व में।*

हे **(अदिते)** अदिति तू मेरा **(अनुमन्यस्व)** अनुमोदन कर कि मैं प्रभु आज्ञा से विधिपूर्वक हवन–यज्ञ कर रहा हूँ।

*ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व–*इससे पश्चिम में।*

हे **(अनुमते)** अनुमति अर्थात् सब सर्व साधारण की अनुमति, तू भी मेरा **(अनुमन्यस्व)** अनुमोदन कर।

ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व–*इससे उत्तर में।

हे **(सरस्वति)** अर्थात् वेद विद्या के ज्ञाता विद्वान भी मेरा अनुमोदन करें।

भावार्थ :–

अनु शब्द का अर्थ अध्ययन, साधना आदि के बाद है। अर्थात् वेदाध्ययन और साधना आदि के बाद साधारण –जन यज्ञ– हवन इन सत्य कर्मों का अनुमोदन करते हैं। और जहाँ सरस्वती शब्द है वहाँ चारों वेदों एवं योग विद्या के ज्ञाता विद्वान इस सर्वश्रेष्ठ कर्म यज्ञ का अनुमोदन करते हैं। अतः वैदिक पद्धति में विद्वानों के अनुमोदन और प्रमाण की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। ऐसी कोई भक्ति अथवा कर्म जो अपने स्वयं के विचारों पर आधारित हो, और उसका प्रमाण वेदों में अथवा विद्वानों में न हो, तो उसे मिथ्या कहा गया है।

***ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञम् प्रसुव यज्ञपतिम् भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतम् नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचम् नः स्वदतु।।**

(यजुर्वेद 30/1)

हे **(देव)** दिव्य गुणों वाले **(सवितः)** सब जगत को उत्पन्न करने वाले परमात्मा आप हमारे **(यज्ञम्)** यज्ञ को **(प्रसुव)** बढ़ायें–यज्ञ करने की प्रेरणा दें तथा **(यज्ञपतिम्)** यज्ञमान को **(भगाय)** सब सुखों से भर दें **(दिव्यः)** शुद्ध स्वरूप **(गन्धर्वः)** पृथिवी को धारण करने वाला ईश्वर **(केतपूः)** बुद्धि को पवित्र करने वाला ईश्वर **(नः)** हमारी **(केतम्)** बुद्धि को **(पुनातु)** पवित्र करे। तथा **(वाचस्पतिः)** वाणी का स्वामी ईश्वर **(नः)** हमारी **(वाचम्)** वाणी को **(स्वदतु)** विद्या का स्वाद दे। अर्थात् हम वेदविद्या ग्रहण करके सदा मीठी वाणी बोलें।

अर्थ :–

हे दिव्य गुणों वाले, सब जगत को उत्पन्न करने वाले परमात्मा आप हमारे यज्ञ को बढ़ायें–यज्ञ करने की प्रेरणा दें तथा यज्ञमान को सब सुखों से भर दें। शुद्ध स्वरुप पृथिवी को धारण करने वाला ईश्वर, बुद्धि को पवित्र करने वाला ईश्वर, हमारी बुद्धि को पवित्र करे। तथा वाणी का स्वामी ईश्वर

हमारी वाणी को विद्या का स्वाद दे। अर्थात् हम वेद विद्या ग्रहण करके सदा मीठी वाणी बोलें।

भावार्थ :–

मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना है कि हे ईश्वर हमें यज्ञ करने की प्रेरणा दे। हम जीवन भर यज्ञ करते रहें। यज्ञ करने वाले यज्ञमान को ईश्वर सब प्रकार से सुख दें। वस्तुतः यज्ञमान यज्ञ करके तीनों लोक एवं प्रत्येक प्राणी का लाभ करता है, जिस कारण ईश्वर प्रसन्न होता है और यज्ञमान को असीम सुख देता है। अतः हमें यज्ञ करना चाहिए । दिन–प्रतिदिन यज्ञ करके अपना एवं पृथिवी का कल्याण करना चाहिए।

आघारावाज्याहुतियाँ

आघार का अर्थ तपाया हुआ और आज्य का अर्थ है घी। अतः गर्म किये हुए घी से नीचे लिखे मन्त्रों से आहुति दें।

***ओ३म अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदं न मम।।**

(इससे यज्ञ कुण्ड के उत्तर भाग में अग्नि में आहुति दें।)

अर्थ :–

(ओम्) सब की रक्षा करने वाले ईश्वर **(अग्नये)** प्रकाश स्वरूप परमात्मा के लिये मैं यह **(स्वाहा)** सत्य क्रिया द्वारा घृत की आहुति देता हूँ। **(इदम्)** यह **(अग्नये)** परमात्मा के लिये है **(इदम्)** यह **(न)** नहीं है **(मम)** मेरे लिये।

भावार्थ :–

यह घृत की आहुति मैं ईश्वर के लिये अर्पित करता हूँ । यहां सब कुछ ईश्वर का है, मेरा अपना कुछ भी नहीं है!

***ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदं न मम।।**

(इससे दक्षिण भाग में अग्नि में आहुति दें।)

अर्थ :–

(ओ३म) सबका रक्षक ईश्वर **(सोमाय)** सुख दाता सुख स्वरुप परमात्मा के लिये **(स्वाहा)** यह घृत की आहुति है। **(इदम् सोमाय)** यह

सुख स्वरुप परमात्मा का सब कुछ है **(इदम् न मम)** यहां मेरा अपना कुछ भी नहीं है।

निम्नलिखित मन्त्रों के द्वारा दो आहुतियां यज्ञकुन्ड के मध्य अग्नि में डालें

***ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदं न मम।।**

(ओ३म) सब का रक्षक ईश्वर **(प्रजापतये)** सब संसार के स्वामी परमात्मा के लिये **(स्वाहा)** यह आहुति देता हूँ **(इदं प्रजापतये इदं न मम)** यह सब संसार को पालने वाले परमात्मा के लिये है। यहां मेरा अपना कुछ भी नहीं है।

***ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय इदं न मम।।**

(ओ३म) सबका रक्षक ईश्वर **(इन्द्राय)** परम ऐश्वर्य युक्त परमात्मा के लिये **(स्वाहा)** यह घृत की आहुति है। **(इदं इन्द्राय इदं न मम)** यह ईश्वर के लिये है मेरा अपना यहां कुछ नहीं है।

भावार्थ :–

नित्य यज्ञ–हवन करने वाले भक्तों की यह भावना दृढ़ हो जानी चाहिये कि जीव का इस संसार में कुछ भी नहीं है। सब कुछ ईश्वर का है। ईश्वर के दिए अन्न पृथिवी आदि पदार्थों तथा मानुष शरीर का कर्त्तव्य कर्म एवं साधना में उपयोग करके हम मोक्ष पद प्राप्त करें।

प्रातः कालीन यज्ञ के मन्त्र

निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा घृत के साथ साथ सामग्री की भी आहुतियां दें।

ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।
ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।
ओ३म् ज्योतिः सूर्यःसूर्यो ज्योतिः स्वाहा।
ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या
जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा।।

(यजुर्वेद मन्त्र 3/9–10)

अर्थः—

(ओ३म) सब का रक्षक परमात्मा **(सूर्यः)** सूर्य शब्द का अर्थ यहाँ परमात्मा है। यजुर्वेद मन्त्र 32/1 में ईश्वर को अग्नि, आदित्य वायु, चन्द्रमा आदि कई नामों से पुकारा गया है। यह ईश्वर के नाम ईश्वर के गुणों के आधार पर वेदों में कहे गये हैं। जैसे सृ—गतौ धातु से सूर्य शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है सब स्थान पर गति वाला। परमात्मा सब में है और चेतन—गतिशील है। इसलिये परमात्मा का नाम यहां सूर्य है। अतः यहां मन्त्र में सूर्य शब्द का अर्थ आकाश में चमकने वाला सूर्य नहीं है। शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ 14/3/2/1 में यज्ञ को सब भूतों एवं सब देवों का आत्मा कहा है। अर्थात् यज्ञ करने से ही पृथ्वी, जल, वायु आदि पांच महाभूत एवं वसु, आदित्य आदि 33 जड़ देवताओं में वृद्धि होती है और प्राणी को भरपूर अन्न—जल आदि सभी पदार्थ मिलते हैं।

आगे कहा यज्ञ न करने से प्रजा वा पशु आदि नष्ट हो जाते हैं। अतः प्राणी पृथिवी, वन, वनस्पति एवं परिवार—प्रजा आदि की रक्षा एवं उन्नति के लिए नित्य यज्ञ—हवन करे। इसी कान्ड के श्लोक 9 में भी ऋषि ने समझाया कि **"सूर्याय स्वाहा" "सूर्यो वै सर्वेशां देवानामात्मा तत्सर्वाभि.......**
..........विवृढं यज्ञस्य" अर्थात् सूर्य सब जड़ आदि देवों का आत्मा है। यहां सूर्य का अर्थ परमात्मा है जो चार चेतन देव तथा तैंतीस जड़ देवों का आत्मा है।

जनक की आचार्या **(गुरु)** बाल ब्रह्मचारिणी गार्गी एवं ऋषि याज्ञवल्क संवाद में इन देवों का वर्णन आया है। और माता, पिता, अतिथि एवं आचार्य **(सभी चेतन देव)** पूजनीय कहे हैं। तथा 8 वसु **(अग्नि, पृथ्वी, वायु,** जल, **अन्तरिक्ष, आदित्य, ~~देवलोक, द्यौः~~, चन्द्र एवं नक्षत्र लोक), रुद्र ग्यारह हैं** :— शरीरस्थ 10 प्राण अर्थात् **प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय** एवं **जीवात्मा**।

रुद्र का अर्थ है रुलाने वाला। अतः जब शरीर से यह प्राण एवं जीवात्मा निकलता है, तब निकट सम्बन्धी रोते हैं। अतः इन ग्यारह देवों को रुद्र कहा गया है। ईश्वर जब पापी को दण्ड देता है तब वह प्राणी दुःख पाकर रोता है। अतः ईश्वर का नाम वेदों में रुद्र भी कहा है। बारह आदित्य देव कहे गये हैं जिनमें बारह महीने आते हैं। सब जगत को यह चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ,

आषाढ़, सावन, भादों आदि बारह मास लिए हुए जाते हैं। अतः इन्हें आदित्य कहा है अर्थात्, प्रलय में सब को ले चलने वाला आदित्य है। बत्तीसंवा देव इन्द्र अर्थात् बिजुली है। तथा तैंतीसवा देव प्रजापति अर्थात् यज्ञ है। सामवेद मंत्र 96 में भी इन तैंतीस जड़ देवताओं का वर्णन आया है। प्रकृति से रचित इन तैंतीस जड़ देवताओं की पूजा का विधान वेदों में नहीं है। अतः हम, एक चेतन ब्रह्म, जो सम्पूर्ण संसार का रचयिता है, उसकी यज्ञ द्वारा नित्य पूजा करें। मंत्र में **(ज्योतिः)** शब्द का अर्थ प्रकाश–स्वरुप परमेश्वर है। **(वर्चः)** शब्द का अर्थ तेजस्वी स्वरुप वाला परमेश्वर है। **(देवेन सवित्रा)** का अर्थ है सबको उत्पन्न करने वाला ईश्वर। **(सजुः)** का अर्थ प्रीति करने वाला। **(इन्द्रवत्या उषसा)** का अर्थ सब प्रकार का ऐश्वर्ययुक्त, परमात्मा और **(उषसा)** अर्थात् उषा के द्वारा **(सजुः)** अर्थात् प्रेम करने वाला अर्थात् सब संसार को रचकर सबसे प्रेम करने वाला ईश्वर। **(जुषाणः)** स्तुति किया हुआ ईश्वर, **(वेतु)** हमें ऐसे ईश्वर का ज्ञान हो। इसी भावना से हम अग्नि में आहुतियाँ डालते हैं। ऊपर लिखे इन चार मंत्रों का भाव यह है कि जो–जो गुण ईश्वर के इन मंत्रों में कहे गये हैं, वह अनन्त गुणों में से कुछ गुण ही हैं। अतः स्वयं प्रकाशक चेतन ब्रह्म, जिसने यह सारा संसार रचा है, जो गुणों को देनेवाला है, उस ईश्वर की कृपा से और उसी के दिए हुए वैदिक ज्ञान से हम यज्ञ करते हैं और हमारे इस यज्ञ के द्वारा ईश्वर हम पर प्रसन्न होये।

सायंकालीन यज्ञ के मन्त्र

निम्नलिखित चार मंत्रों द्वारा सायंकाल का यज्ञ करें।

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।

ओ३म अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।

(यजुर्वेद मन्त्र 3/9)

ओ३म अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।

ओ३म सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या

जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा।

(यजूर्वेद मन्त्र 3/10)

(ओ३म) सबका रक्षक परमेश्वर **(अग्निः)** अग–धातु से अग्रणी शब्द

निष्पन्न होता है जिसका अर्थ वह शक्ति है जो संसार रचना से भी पहले होती है। ईश्वर संसार रचना से पहले भी था, अब भी है और आगे भी रहेगा। अतः अग्नि शब्द का अर्थ यहाँ, सब विद्याओं का प्रकाश करने वाला, परमेश्वर है। अग्नि शब्द का अर्थ यहाँ भौतिक अग्नि नहीं है। **(ज्योतिः)** ज्योतिस्वरूप। भाव यह है कि सबका रक्षक परमात्मा, ज्योतिस्वरूप है और जैसे सब पदार्थों में यह भौतिक अग्नि व्यापक है, उसी प्रकार ईश्वर सब पदार्थों में व्यापक है। **(स्वाहा)** इस सर्वव्यापक परमेश्वर के लिए ही मैं अग्नि में आहुति देता हूँ।

दूसरा, **(ओ३म)** सबकी रक्षा करने वाला ईश्वर, **(अग्निः)** सर्वव्यापक परमेश्वर, **(वर्चः)** वर्चस्वी अर्थात् तेजस्वी है। **(ज्योतिः)** ज्योति **(वर्चः)** भी तेजस्वरुप वाली है **(स्वाहा)** ऐसे परमात्मा के लिए मैं अग्नि में आहुति देता हूँ।

तीसरा, **(ओ३म)** सबकी रक्षा करने वाला परमेश्वर **(अग्निः)** सर्वव्यापक अग्नि अर्थात् परमेश्वर **(ज्योतिः)** ज्योतिस्वरुप है। **(ज्योतिः)** ज्योतिस्वरुप ही **(अग्निः)** सर्वव्यापक परमात्मा है। **(स्वाहा)** मैं ऐसे परमात्मा के लिए अग्नि में आहुति देता हूँ। अतः इन मन्त्रों में '**अग्निः**', '**वर्चः**', एवं '**ज्योतिः**' शब्द परमात्मा के लिए ही आया है और परमात्मा की पूजा हम नित्य हवन–यज्ञ द्वारा करें।

चौथा, **'सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा'** *(यह सायँकाल की आहुति है)*। इस मन्त्र का भाव है कि ईश्वर सब जगत को उत्पन्न करने वाला है, सर्वव्यापक है, हमारे शरीर के अन्दर और बाहर सर्वत्र है; अतः हम ऐसे ईश्वर की प्राप्ति के लिए, अग्नि में आहुति डालते हैं।

पाँचवा, **'सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा'** *(यह प्रातःकाल की आहुति है)*। इस मन्त्र का भाव है कि ईश्वर सूर्य, चन्द्रमा, वायु आदि सब लोकों में व्यापक है। हमारे शरीर के अन्दर–बाहर सर्वत्र है। ऐसे परमेश्वर को जानने के लिए हम अग्नि में आहुति डालते हैं।

***ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय इदं न मम।।**

अर्थात् **(ओम्)** सबकी रक्षा करने वाले ईश्वर **(भूः)** सब जगत को उत्पन्न करने वाले, **(अग्नये)** सबमें रहने वाले **(प्राणाये)** सबको प्राण देने

वाले परमात्मा के लिए, मैं यह अग्नि में आहुति **(स्वाहा)** डालता हूँ। "**इदमग्नये प्राणाय इदं न मम**" यह आहुति परमात्मा के लिए है, इसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं है।

***ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवेऽपानाय इदं न मम।।**

अर्थात् **(ओम्)** सबका रक्षक परमेश्वर **(भुवः)** दुःखों का नाश करने वाला परमेश्वर **(वायवे)** गतिशील परमेश्वर **(अपानाये)** दुःखों व दोषों को दूर करने वाले परमेश्वर, को प्राप्त करने के लिए, मैं अग्नि में आहुति **(स्वाहा)** देता हूँ। "**इदं वायवेऽपानाय इदं न मम**" यह आहुति एवं सबकुछ परमेश्वर का है, इसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं है।

***ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा।**
इदमादित्याय व्यानाय इदं न मम।।

अर्थात् **(ओम्)** सबका रक्षक परमेश्वर **(स्वः)** सर्वव्यापक– आनन्दस्वरूप परमेश्वर **(आदित्याय)** प्रकाशस्वरुप परमात्मा **(व्यानाय)** सर्वव्यापक परमात्मा को प्राप्त करने के लिए, मैं यह आहुति **(स्वाहा)** अग्नि में देता हूँ। "**इदमादित्याय व्यानाय इदं न मम**" यह आहुति–सब कुछ ईश्वर के लिए है, इसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं है।

***ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा।**

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदं न मम।।

अर्थात् **(ओ३म)** सबका रक्षक परमेश्वर **(भूः)** जगत उत्पादक परमेश्वर **(भुवः)** दुःखों को दूर करने वाला परमेश्वर **(स्वः)** आनन्दस्वरूप परमेश्वर **(अग्नि–वायु–आदित्येभ्यः)** सर्वव्यापक, गतिशील एवं प्रकाशस्वरूप परमेश्वर **(प्राण– अपान–व्यानेभ्यः)** सबको प्राण देने वाला, दुःख दोष नाशक एवं सर्वव्यापक परमेश्वर के लिए, मैं यह आहुति **(स्वाहा)** अग्नि में देता हूँ। "**इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदं न मम**" यह आहुति ईश्वर के लिए है, मेरे लिए नहीं है।

***ओम् आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा।**

अर्थात् **(ओम्)** सबका रक्षक परमेश्वर **(आपः)** सर्वव्यापक परमेश्वर **(ज्योतिः)** ज्योतिस्वरूप परमेश्वर **(रसः)** आनन्दरूपी रस वाला परमेश्वर **(अमृतं)** जन्म–मृत्यु से रहित, अविनाशी परमेश्वर **(ब्रह्म)** सबसे बड़ा परमेश्वर **(भूः)** प्राणदाता परमेश्वर **(भुवः)** दुःखों को दूर करने वाला परमेश्वर **(स्वः)** सुखस्वरूप परमेश्वर **(ओम्)** सबका रक्षक परमेश्वर, ऐसे अविनाशी नाम वाले परमेश्वर के लिए **(स्वाहा)** मैं अग्नि में आहुति देता हूँ।

अर्थः–

अर्थात् सबका रक्षक परमेश्वर, सर्वव्यापक परमेश्वर, ज्योतिस्वरुप परमेश्वर, आनन्दरूपी रस वाला परमेश्वर, जन्म–मृत्यु से रहित, अविनाशी परमेश्वर, सबसे बड़ा परमेश्वर, प्राणदाता परमेश्वर, दुःखों को दूर करने वाला परमेश्वर, सुखस्वरुप परमेश्वर, सबका रक्षक परमेश्वर, ऐसे अविनाशी नाम वाले परमेश्वर के लिए मैं अग्नि में आहुति देता हूँ।

***ओम् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।**
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।।
(यजुर्वेद मन्त्र 32/14)

(अग्ने) हे परमेश्वर **(देवगणाः)** दिव्य वाणी वेद के ज्ञाता विद्वान जन **(च)** और **(पितरः)** सृष्टि परम्परागत ज्ञान के ज्ञाता, हमारे माता–पिता व ज्ञानी जन **(याम्)** जिस **(मेधाम्)** मेधा अर्थात् बुद्धि की **(उपासते)** उपासना करते हैं **(तया)** उस **(मेधया)** बुद्धि के द्वारा **(माम्)** मुझे **(अद्य)** आज ही **(स्वाहा)** सत्य वेद वाणी से **(मेधाविनम्)** बुद्धि युक्त **(कुरु)** कर दे।

अर्थः–

हे परमेश्वर, दिव्य वाणी वेद के ज्ञाता विद्वान जन और सृष्टि परम्परागत ज्ञान के ज्ञाता, हमारे माता पिता व ज्ञानी जन जिस मेधा अर्थात् बुद्धि की उपासना करते हैं। उस बुद्धि के द्वारा मुझे आज ही सत्य वेद वाणी से बुद्धि युक्त कर दें।

भावार्थः–

पितर शब्द का अर्थ परम्परा से चले आए वैदिक ज्ञान के ज्ञाता, ज्ञानी जन है। ईश्वरीय वाणी वेद, ईश्वर के समान अनादि, अविनाशी है तथा जिस

प्रकार ईश्वर का ज्ञान, कर्म, स्वभाव बदला नहीं जा सकता। अतः मन्त्र का भाव है कि हे ईश्वर! जिस विद्वान में परम्परागत वैदिक ज्ञान प्रगट है, ऐसे बुद्धिमान विद्वान की सेवा करके, हम परम्परा से चले आ रहे वैदिक ज्ञान को प्राप्त करें तथा परम्परा से चली आ रही उपासना, योग विद्या को धारण करें। इस वैदिक ज्ञान को तोड़ कर कोई अपना मनघड़न्त पूजा–पाठ का मार्ग न बना लें। अथवा किसी अन्य का स्वयं का बनाया वेद–विरूद्ध मार्ग न अपनाएँ। इसी कामना से हे प्रभु। मैं, परम्परा से (स्वाहा) इस सत्य वेद वाणी द्वारा अग्नि में आहुति डालता हूँ।

मिष्टान की आहुति निम्नलिखित मन्त्र द्वारा देंः–

ओम् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्।
अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे।
अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रै सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा।। इदमग्नये स्विष्टकृते– इदं न मम।।

अर्थात् **(अग्निः)** हे ईश्वर! हमारे द्वारा **(अस्य कर्मणः)** यह कर्म **(यत्)** जिस प्रकार **(अति अरीरिचं)** अधिक किया गया है **(यत् वा)** अथवा **(इह)** यहाँ, इस संसार में **(न्यूनम् अकरम्)** कम किया गया है **(तत्)** उन कर्मों को **(सु–इष्ट–कृत्)** शुभ भावना से किया हुआ **(विद्यात्)** आप जानें।

हे ईश्वर! आप कृपा करके **(में)** मेरी (सर्वम्) सब **(सु+इष्टम्)** शुभ भावनाओं को **(सुहुतम्)** शुभ–सत्य आहुति युक्त **(करोतु)** कर दें। **(सु+इष्ट+कृते)** मेरी शुभ कामनाओं–भावनाओं को पूर्ण करने वाले **(सु+हुत+हुते)** मेरे यज्ञ में डाली हुई आहुतियों को शुभ बना देने वाले ईश्वर **(सर्वप्रायश्चित्त–आहुतीनाम्)** सब प्रायश्चित करने के लिए, आहुतियों को तथा **(कामान् समर्धयित्रे)** कामनाओं को समर्थ **(पूर्ण)** करने वाले **(अग्नये)** ईश्वर के लिए, यह आहुति देता हूँ। वह प्रभु **(नः)** हमारी **(सर्वान्)** सब **(कामान्)** शुभ कामनाओं को **(स्वाहा)** इस सत्य वेदवाणी द्वारा दी गई आहुतियों से **(समर्धय)** पूर्ण करें। (इदं) यह सब **(सु+इश्ट+कृते)** शुभ कामनाओं को पूर्ण करने वाले **(अग्नये)** ईश्वर के लिए है। **(इदं न मम)** यहाँ मेरा अपना कुछ भी नहीं है।

अर्थः—

हे ईश्वर! हमारे द्वारा यह कर्म जिस प्रकार अधिक किया गया है अथवा यहाँ, इस संसार में कम किया गया है, उन कर्मों को शुभ भावना से किया हुआ आप जानें।

हे ईश्वर! आप कृपा करके मेरी सब शुभ भावनाओं को शुभ—सत्य आहुति युक्त कर दें। मेरी शुभ कामनाओं—भावनाओं को पूर्ण करने वाले मेरे यज्ञ में डाली हुई आहुतियों को शुभ बना देने वाले ईश्वर सब प्रायश्चित करने के लिए, आहुतियों को तथा कामनाओं को समर्थ करने वाले ईश्वर के लिए, यह आहुति देता हूँ। वह प्रभु हमारी सब शुभ कामनाओं को इस सत्य वेदवाणी द्वारा दी गई आहुतियों से पूर्ण करें। यह सब शुभ कामनाओं को पूर्ण करने वाले ईश्वर के लिए है। यहाँ मेरा अपना कुछ भी नहीं है।

भावार्थः—

यजुर्वेद मन्त्र 7/48 का भाव है कि जीव कर्म करता है परन्तु फल ईश्वर देता है। अतः हम सदा वेदों में कहे, शुभ कर्म ही करें। वेद—विरुद्ध कर्म, अशुभ एवं पापयुक्त होते हैं जिनका फल सदा दुःख होता है परन्तु निःस्वार्थ कर्म करने पर ही पुण्य प्राप्त होता है। अतः हम शुभ कर्म करके भी ईश्वर से ही प्रार्थना करें कि **''तत् सु—इश्ट—कृत् विद्यात्''** अर्थात् मेरे द्वारा दिए शुभ कर्मों को आप ही जाने कि मैनें वास्तव में शुभ किए हैं या अशुभ किए हैं। क्योंकि हे प्रभु! निर्णय सदा आपके हाथ में है। दूसरा, **''सु+हुत+हुते''** अर्थात् हे प्रभु! मेरे द्वारा यज्ञ में डाली हुई आहुतियाँ जिसमें मैने शुभ कर्म करके उन कर्मों को, आपको समर्पित किया है, वह मेरे सब कर्म और मेरे प्रायश्चित, सब सिद्ध हो जाएँ अर्थात् शुभ फल देने वाले हो जाएँ। वैदिक विद्या के अनुसार, यह भी हम जानें कि चाहे हम दिन—रात शुभ कर्म करें परन्तु वेदाध्ययन के अभाव में, प्रथम तो शुभ कर्मों का बोध ही नहीं होगा, दूसरा, यदि हम यज्ञ में आहुतियाँ नहीं डालेंगे तो हम ईश्वर को सम्पूर्ण दिन के किए हुए कर्म समर्पित भी नहीं कर पाँएगे और ईश्वर सदा यज्ञ में ही प्रतिष्ठित होता है। अतः बिना यज्ञ में डाली हुई आहुति के, वह हमारी प्रार्थना सुनेगा भी नहीं। अतः हम सदा वेदों को सुनते एवं यज्ञ में आहुति डालते रहें। यह कर्म संसार का सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा गया है। (यज्ञौ वै श्रेष्ठतमम् कर्मः) श्रीराम, श्रीकृष्ण, व्यास आदि राजऋषियों ने पिछले युगों

में असंख्य यज्ञ करके पृथ्वी को गुणों से अलंकृत कर दिया था। उसी परम्परा को हम कायम करें।

निम्नलिखित मन्त्र से तीन बार पूर्ण आहुति दें:–

ओम् सर्वम् वै पूर्ण स्वाहा।

अर्थ:–

(सर्वम्) हमारी शुभ कामनाएँ **(वै)** निश्चित रुप से **(पूर्ण)** पूर्ण हों **(स्वाहा)** इस भावना से मैं अग्नि में पूर्ण आहुति डालता हूँ।

भावार्थ:–

प्रतिदिन हवन–यज्ञ करने वाले के घर में दूध, घृत, शहद, जल, अन्न, धन एवं सुख–शांति आदि सब पदार्थों का भण्डार भर जाता है और सभी शुभ कामनाँए पूर्ण होती हैं। तीन बार आहुति देने के कई भाव हैं परन्तु यह उत्तम भाव है कि ऊपर कही सभी कामनाँए पूर्ण होती हैं और आधि भौतिक, आधि दैविक तथा आध्यात्मिक, यह तीन ताप (दु:ख) शान्त हो जाते हैं।

*** इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता**
प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्या
इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा मा
वस्तेनऽ ईशत माघशंसो ध्रुवाऽअस्मिन्
गोपतौ स्यात बह्वोर्यजमानस्य पशून्पाहि।
(यजूर्वेद मन्त्र 1/1)

हे प्रभु हम **(इषे त्वा)** अन्न इत्यादि के लिए तथा **(ऊर्जे त्वा)** शारीरिक तथा आत्मिक बल के लिए आपकी शरण को प्राप्त हों। **(सविता)** तीनों लोकों को रचने वाला **(देवः)** स्व प्रकाश स्वरूप एवं सब पदार्थों को देने वाला परमेश्वर (वः) हमारी **(वायवः स्थः)** इन्द्रियाँ, अन्तःकरण तथा प्राणों को **(श्रेष्ठतमाय कर्मणे)** यज्ञ रूपी श्रेष्ठ कर्मों में **(प्रार्पयतु)** लगाए रखें। **(प्रजावतीः)** हमारे समाज में **(अयक्ष्मा)** क्षय जैसे रोग **(अनमीवा)** संक्रामक रोग **(अघ्यन्याः)** पापी **(स्तेनः)** चोर इत्यादि **(मा ईशत)** उत्पन्न न होवें। **(मा अघशंसः ईशत)** पाप की इच्छा करने वाले भी समाज में उत्पन्न न होवें। **(अस्मिन गोपतौ)** इस सम्पूर्ण पृथिवी पर **(बह्वोः)** अति अधिक

(ध्रुवाः) अटल सुख हो। **(यज्ञमानस्य)** शुभ कर्म करने वाले यजमान के **(पशून् पाहि)** पशुओं तथा परिवार की रक्षा करो।

अर्थः–

हे प्रभू! हम अन्न इत्यादि के लिए तथा शारीरिक तथा आत्मिक बल के लिए आपकी शरण को प्राप्त हों। तीनों लोकों को रचने वाला, स्वप्रकाशस्वरुप एवं सब पदार्थों को देने वाला, परमेश्वर हमारी इन्द्रियाँ, अन्तःकरण तथा प्राणों को यज्ञ रूपी श्रेष्ठ कर्मों में लगाए रखें। हमारे समाज में क्षय जैसे रोग, संक्रामक रोग, पापी, चोर इत्यादि उत्पन्न न होवें।

पाप की इच्छा करने वाले भी समाज में उत्पन्न न होवें। इस सम्पूर्ण पृथिवी पर अति अधिक अटल सुख हो। शुभ कर्म करने वाले यजमान के पशुओं तथा परिवार की रक्षा करो।

*** प्रत्युष्टङ् रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तङ् रक्षो।**
निष्टप्ताऽअरातयः उर्वन्तरिक्षमन्वेमि।।

(यजुर्वेद मन्त्र 1/7)

हे ईश्वर आप की कृपा से मैं **(रक्षः)** दुष्ट स्वभाव को **(प्रत्युष्टम्)** भस्म कर दूँ। **(अरातयः)** दान, सेवा इत्यादि शुभ कर्मों को न करने वालों को **(प्रत्युष्टः)** भी भस्म कर दूँ तथा **(रक्षः)** राक्षस वृत्ति वाले स्वार्थी प्राणी को **(निष्टप्तम्)** और **(अरातयः)** दान न देने वालों को **(निष्टप्ताः)** पीड़ायुक्त करुँ। इस प्रकार मैं **(अन्तरिक्षम्)** सब जगह **(उरु)** सब सुखों को **(अन्वेमि)** प्राप्त करूँ।

अर्थः–

हे ईश्वर! आप की कृपा से मैं दुष्ट स्वभाव को भस्म कर दूँ। दान सेवा इत्यादि शुभ कर्मों को न करने वालों को भी भस्म कर दूँ तथा राक्षस वृत्ति वाले स्वार्थी प्राणी को और दान न देने वालों को पीड़ायुक्त करुँ। इस प्रकार मैं सब जगह, सब सुखों को प्राप्त करुँ।

भावार्थः–

विद्या प्राप्ति, सेवा–भक्ति एवं दान इत्यादि शुभ कर्मों को न करने वाले मनुष्य, असुर वृत्ति वाले होते हैं। ऐसे दुष्ट स्वभाव को, हम सदा वेदों के उपदेश प्राप्त करते हुए, यज्ञादि शुभ कर्म करके, समाप्त करें। दुष्ट स्वभाव

वाले प्राणी के संग से दूर रहें। मीरा ने सत्य ही कहा है **"तज कुसंग सत्संग बैठकर, हरि चरचा सुन लीजै"**। इस मन्त्र में यह विशेष उपदेश है कि यदि हम वेदविरोधी एवं दुष्ट कर्म करने वालों का संग नहीं छोड़ेंगे, तब यज्ञ–ईश्वर पूजा का रंग हम पर नहीं चढ़ पाएगा। सत्य मार्ग पर चलते हुए, अपने अच्छे आचरण द्वारा हम दुष्टों के स्वभाव को नाश करने का प्रयत्न करें और यदि दुष्ट अपने दुष्ट आचरण को नहीं छोड़ता तो ऐसे दुष्ट विचारों वाले मनुष्यों का संग ही छोड़ दो।

***न तस्य मायया च न रिपुरीषीत मर्त्यः।**
यो अग्नये ददाश हव्यदातये।।

(सामवेद मंत्र 104)

(यः) जो, **(मर्त्यः)** मनुष्य **(हव्यदातये)** देवों को हव्य पदार्थ देने के लिए **(अग्नये)** अग्नि के लिए **(ददाश)** आहुति सहित दान करता है, **(तस्य)** उसका (रिपुः) शत्रु (मायया चन) माया द्वारा भी (न) नहीं (ईशीत) शासन कर सकता।

अर्थः–

जो मनुष्य देवों को हव्य पदार्थ देने के लिए, अग्नि के लिए आहुति सहित दान करता है, उसका शत्रु माया द्वारा भी नहीं शासन कर सकता।

भावार्थः–

मर्त्यः अर्थात् मरणधर्मा शरीर वाला मनुष्य। प्रकृति के तीन गुणों से पृथिवी, जल, आकाश, वायु एवं अग्नि, यह पाँच भूत बनते हैं। यह मानव शरीर इन्हीं पंच भूतों से बना है जिसमें चेतन जीवात्मा निवास करती है। मानव शरीर पाप एवं पुण्य, इन दोनों कर्मों को भोगने एवं वर्तमान में यज्ञादि शुभ कर्मों को करते हुए सब दुःखों का नाश करके, मोक्ष का सुख प्राप्त करने के लिए मिला है। आज प्रायः प्राणी वेदज्ञ विद्वानों द्वारा सत्य मार्ग का उपदेश न पाने के कारण मोक्ष आदि अनेक वैदिक अलौकिक शब्दों के अर्थों की जानकारी तक भूल गया है। और यही कारण है कि प्रायः प्राणी दुःखी एवं अशांत वातावरण में अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझ रहा है। वेद में कहा यह "मर्त्यः" शब्द भी चेतावनी दे रहा है कि यह मानव शरीर एक दिन मर जाएगा अर्थात् पूर्णतः नष्ट हो जाएगा। यजुर्वेद मंत्र 40/15 में इस

शरीर के लिए यही उपदेश है कि (इदम्) यह (शरीरम्) नाशवान शरीर (भस्मात) अन्त में भस्म होने वाला होता है। परन्तु व्यासमुनि ने माया में लिप्त जीव को अपने शरीर सहित इस तरह प्रतिक्षण विषय–विकार–छल कपट एवं स्वार्थ आदि बुराइयों में लीन होते देखकर महाभारत वनपर्व में कहा है **"अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्। शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम।।"** अर्थात् जीवित मनुष्य प्रतिदिन मुर्दों को शमशान–घाट जाते देखकर भी शेष बचे हुए जीव इस तरह विषय–विकारों में लीन और धन आदि इकट्ठा करने में लीन हैं कि शायद यह लोग सदा इस पृथिवी पर रहेंगे। इससे बढ़कर और क्या कोई आश्चर्य हो सकता है। यजुर्वेद मंत्र 40/11 में विज्ञान एवं आध्यात्मिकवाद, दोनों की उन्नति साथ–साथ कही है। दुर्भाग्यवश आज केवल विज्ञान की उन्नति की चमक–दमक एवं पाश्चात्य संस्कृति की उड़ानों में आज प्राणी आकाश में उड़ना तो सीख गया है लेकिन पृथिवी पर भाईचारे सहित टिककर चलना भूल गया है। अन्यथा एक इस जन्म–मृत्यु की ही वैदिक गहराई का क्षणिक ज्ञान भी मनुष्यों में नास्तिकवाद को बढ़ावा नहीं दे सकता था। अब भी प्रत्येक प्राणी को वैदिक विद्वान के उपदेश द्वारा देहान्त से पहले ईश्वर शरण में आने की शीघ्रता अति आवश्यक है। तभी गृहस्थादि आश्रमों के कर्त्तव्यों को हम ठीक प्रकार से निभाते हुए दशरथ, जनक एवं उनकी सुखी प्रजाओं की भांति अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष सुख को प्राप्त कर पाएँगे। अन्यथा यह मनुष्य शरीर पुनः प्राप्त करना, हथेली में सरसों उगाने के समान है। क्योंकि पिछले तीन युगों में राजा एवं प्रजा दोनों वैदिक ज्ञान से भरपूर होते थे। वैदिक ज्ञान में विज्ञान एवं भौतिक शिक्षा, नैतिक एवं राजनैतिक सहित तिनके से लगाकर ब्रह्म तक की शिक्षा दी गई है। इसी में आज का गणित, अणु–परमाणु, भौतिक, रसायनिक ज्ञान, भुगोल, इत्यादि असंख्य ज्ञान सहित संपूर्ण आध्यात्मिकवाद जिसमें माता–पिता, गुरूजनों की सेवा, वृद्धों की सेवा, समता, मधुर वाणी, प्रकृति, जीव एवं ब्रह्म का ज्ञानादि, संपूर्ण तत्त्व ज्ञान दिया गया है। इसी वैदिक शिक्षा के फलस्वरूप जहाँ श्रीराम, क्षत्रिय वंश की मर्यादा पालन करते हुए धनुर्धारी, न्यायप्रिय, सत्यवादी, दुष्टों पर प्रहार करने वाले तथा वेदों के ज्ञान देने वाले ऋषि–मुनियों के सेवक दूरदर्शी, सदाचारी आदि अनेक गुणों की खान थे, वहीं वाल्मीकि रामायण में

वाल्मीकि जी ने बाल काण्ड के प्रथम सर्ग में श्रीराम को वेदज्ञ (चारों वेदों के ज्ञाता), धर्मज्ञ (मानव धर्म अर्थात् कर्त्तव्य के ज्ञाता) प्रजापतिः (प्रजा का पुत्रवत् पालन करने वाले) तथा समाधिवान (वेदानुसार अष्टाँग योग की साधना द्वारा समाधि पद प्राप्त), तत्त्वज्ञ (सब विद्याओं को समाधि द्वारा अनुभव करने वाले) आदि अनेक गुणों से सुशोभित किया है। यह सब ज्ञान उन्होंने गुरू वशिष्ठ के चरणों में बैठकर, चारों वेद सुनकर, प्राप्त किया था। इसी प्रकार राजा दशरथ की प्रजा का वर्णन करते हुए बाल काण्ड के चतुर्थ सर्ग में वाल्मीकि जी कहते हैं कि राजा दशरथ **(वेदवित्सर्वसंग्रहः)** चारों वेदों के ज्ञाता एवं उनका राज्य संपूर्ण सुविधाओं से परिपूर्ण था। प्रजा में ऐसा कोई नहीं था कि जो **(निऽग्निः)** घर में यज्ञ अथवा अग्निहोत्र न करता हो। घर–घर में वेद विद्या का ज्ञान होने के कारण सब नर–नारी **(महर्षिसमः)** वेद मंत्र द्रष्टा ऋषियों के समान थे। राजा दशरथ के राज्य में कामी, नृशंसः, कदर्यो, न अविद्वान च न नास्तिकः अर्थात् दशरथ राज्य में कोई भी कामी, क्रोधी, कंजूस, निर्दयी, हत्यारा, वेद ज्ञान से रहित अविद्वान और ईश्वर को न मानने वाला नास्तिक नहीं था। आगे कहा कि राज्य में **"हृष्टा धर्मात्मा बहुश्रुताः नराः तुष्टा धनैः निर्लोभः च सत्यवादिनः"** "अर्थात् सब नर–नारी प्रसन्न, धर्मात्मा (कर्त्तव्य कर्म करने वाले), बार–बार वेदों को सुनने वाले, अपने धन से संतुष्ट, लोभरहित और सत्य वचन बोलने वाले थे। आगे वाल्मीकि जी ने कहा कि सब मनुष्य दीर्घायु तथा उनकी छः–छः पीढ़ियाँ एक साथ जीवित रहने वाली होती थी। और आज के वेद विरोधी पूजा–पाठ ने प्रजा को कितना दुःख दिया है, यह सब विदित होना चाहिए। तभी तुलसी ने इन श्लोकों का अनुवाद करके अपनी रामायण में थोड़ा–थोड़ा इशारा किया है और कहा

"सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्मनिरत श्रुति नीति।"

अर्थात् वेद मार्ग पर चलते हुए धर्मयुक्त कर्म करते हुए सब नर–नारी आपस में प्रेम का व्यवहार करते हैं।

ईश्वर से निकली इन चारों वेदों की विद्या का पिछले तीनों युगों में कितना प्रभाव था जिसका वाल्मीकि जी ने दशरथ राज्य के (सतयुग से त्रेता तक) सुखों का वर्णन कर रहे हैं। और वेद विद्या के प्रभाव से व्यास मुनि

जी सतयुग से द्वापर तक के सुखों का वर्णन कर रहे हैं। तो क्या आज कोई वेद विरोधी सन्तों के मनघड़न्त पूजा–पाठ से उत्पन्न भ्रष्टाचार, नारी अपमान, बीमारियाँ, निर्मम हत्याएँ, अल्पायु में मृत्यु, असंतोष आदि असंख्य दुःखों के विषय में गहन विचार करता है कि इन वेद विरोधी सन्तों की बताई भक्ति पर चलकर इतने पाप क्यों हो रहे हैं। राजा दशरथ के राज्य में जो ऊपर कहे गुण व्याख्यान किए हैं, आज के प्रायः संत इन्हीं गुणों को ही तो ग्रहण करने का ढिंढोरा पीट रहे हैं। परन्तु विपरीत में धर्म की आड़ में कत्लेआम और अत्यंत दुःखों की बाढ़ सी आ गई है।

ऊपर कहे सामवेद के इस मंत्र 104 में यह विशेष उपदेश है कि भौतिक एवं आध्यात्मिक इन दोनों उन्नतियों के लिए पुरूषार्थ–आदि में जो बाधा आती है वह प्रकृति के तीन गुण–रज, तम एव सत्व हैं, जिनका फल काम, क्रोधादि विषय–विकार, आलस्य एवं अहंकार आदि असंख्य बुराइयाँ हैं। इन्हीं बुराइयों को इस मंत्र में माया कहा है। दूसरा मनुष्यादि भी मानवता के शत्रु होते हैं। यह आन्तरिक एवं बाहरी शत्रु साधक की ईश्वर भक्ति में अपने छल–कपट द्वारा प्रायः विघ्न डालते रहते है। ईश्वर से अधिक इस माया के रहस्य को और कौन जान सकता है। ऋषि मुनि, योगीजन आदि भी तो वेदों में कहे उपदेश को आचरण में लाकर ही इस माया को जीतने में समर्थ होते हैं अन्यथा वेद विरुद्ध चलकर पूर्णतः माया में लीन हुए झूठ–सच कहकर आज कई सन्त बोरियों में रुपये भर–भरकर घर ले जाते देखे जाते हैं और स्वयं को महापुरुष बताते हैं। अतः यहाँ मंत्र में ईश्वर ने माया से छूटने का सरल परन्तु नित्य आचरण में लाने वाला उपाय बताया है। मन्त्र में कहा **''अग्नये ददाश''** अर्थात्, जो मनुष्य यज्ञ करते हैं और नित्य अग्नि में आहुति डालते हैं तथा दान करते हैं। **''तस्य रिपुः''** उन मनुष्यों का शत्रु ''माया चन'' और माया आदि द्वारा भी उस साधक पर **''न ईशीत्''** हावी नहीं हो सकता अर्थात् यज्ञ करने वाले प्राणियों का शत्रु कुछ नहीं बिगाड़ पाते। परन्तु दुर्भाग्यवश आज वेद विद्या न सुनने के कारण जीव अग्निहोत्र–यज्ञ के रहस्य को नहीं जान पाता और प्रायः वेद–विरोधी सन्तों की मनघड़न्त बातों को सुनकर जीवन बर्बाद कर लेता है। आश्चर्य यह है कि जो अपने को महापुरुष कहने वाले मनुष्य, श्रीराम, श्रीकृष्ण की भक्ति करना बताते हैं उन विभूतियों के विषय में रामायण में कहा– **''कोटि वाज**

मेघ प्रभु कीन्ही'' अर्थात् श्रीराम ने अपने जीवन में करोड़ों यज्ञ किए एवं **''राजसूयज्ञ युधिष्ठिर कीन्हों, ताँ में झूठ उठाई''** अर्थात जब युधिष्ठिर महाराज ने यज्ञ किया था तब श्रीकृष्ण महाराज ने यज्ञ में झूठन उठाने की सेवा की थी। महाभारत में इस प्रकार का एक बड़ा सुन्दर वर्णन है। महाभारत ग्रंथ के इसी सभा पर्व में युधिष्ठिर ने भोजन आदि का प्रबन्ध दुःशासन को, ब्राह्मणों के सत्कार का भार अश्वत्थामा को, राजाओं की सेवा के लिए संजय को, सोना तथा रत्न परखने और दक्षिणा देने के कार्य कृपाचार्य को, धर्मों के ज्ञाता विदुर जी को यज्ञ में धन खर्च करने का कार्य तथा दूर–दूर से आए राजा इत्यादियों की भेंट स्वीकार करने का कार्य दुर्योधन को सौंपा था। यह वर्तमान का गहन विचारणीय विषय है कि वेद–विरोधी जो संत माया(धन) का उपदेश करते हुए कहते हैं कि माया को हाथ न लगाओ, माया बर्बाद कर देती है, उस माया को जनता से इक्ट्ठा कर–कर के बोरियों में भर–भर घर ले जाते हैं। यह आज के इन सन्तों द्वारा वेद विरोध में कही झूठी भक्ति का कैसा आश्चर्ययुक्त दृश्य है।

सामवेद मंत्र 757 एवं 759 का भाव है कि यज्ञ मन, बुद्धि एवं पूरे विश्व को शुद्ध करता है। सामवेद मंत्र 1232 में कहा कि ईश्वर वेद मंत्रों से प्राप्त होता है। मंत्र 1214 में कहा कि यज्ञ द्वारा कामादि शत्रुओं का नाश होता है। मंत्र 1161 में कहा यज्ञ से जल, अन्न सभी शुद्ध होते हैं जिसके खाने से बुद्धि शुद्ध होती है। सामवेद मंत्र 1086 में कहा कि यज्ञ से बुद्धि शुद्ध होती है। मं. 1060 में कहा कि एक यज्ञ से लगभग 30,000 सुखों को हम ग्रहण करते हैं। मंत्र 1036 में कहा कि यज्ञ से तीनों लोकों में सुख बरसता है। मंत्र 1007 में कहा कि यज्ञ द्वारा बुद्धि शुद्ध होती है, जिससे सदा शुभ कर्म होते हैं। इस प्रकार हम देखें कि वेद विद्या को प्राप्त भगवान राम और भगवान कृष्ण ने अपने जीवन में असंख्य यज्ञ करके संपूर्ण पृथिवी एवं जनता को सुखों से भर दिया था। आज प्रायः वेद विरोधी संतों ने जनता को गुमराह करके वेद एवं यज्ञादि शुभ कर्मों से विमुख करके सामवेद में उपर कहे सब सुख छीन लिए हैं। और जनता को दुःखों की अग्नि में झोंककर प्रायः यह अप्रमाणिक झूठा दिलासा दिया है कि भक्ति करने वालों को दुःख तो आएँगे ही। जबकि वेदों में यज्ञादि द्वारा ईश्वर की पूजा से धन, पुत्र आदि सब सुख और मोक्ष तक का सुख कहा है। अतः घर, समाज, देश, एवं विश्व

को पुनः एक सूत्र में बाँधने के लिए तथा राम राज्य के सुख देने के लिए पुनः चारों वेदों की विद्या को जीवन में उतारना होगा। हमें आज यह सोचने पर विवश होना ही पड़ेगा कि मनुष्यों के कहने से हम वेद, यज्ञ, योगाभ्यास आदि सनातन विद्याओं का त्याग कर दें अथवा वेदों में ईश्वर द्वारा दी आज्ञानुसार इन विद्याओं को ग्रहण कर लें। क्योंकि मनुष्यों की आज्ञा में सदा दुःख एवं ईश्वर की आज्ञा में सदा सुख प्राप्त होता है।

***अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम्।**
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम्
(सामवेद मंत्र 105)

(सत्पते) सत्य के पालने वाले **(अग्ने)** हे ईश्वर आप **(त्यम्)** उस **(दविष्ठम्)** अत्यन्त दूर **(वृजिनम्)** छोड़ने योग्य **(दुराध्यम्)** दुःखदायी/**द्वेष** करने वाले **(रिपुम्)** विद्या के शत्रु एवं **(स्तेनम्)** चोर को **(सुगम्)** सीधा **(कृधी)** कर दो **(अस्य)** इस शत्रु एवं चोर को **(अप)** दूर करो।

अर्थः–

सत्य के पालने वाले, हे ईश्वर! आप उस अत्यन्त दूर, छोड़ने योग्य दुःखदायी, द्वेष करने वाले, विद्या के शत्रु एवं चोर को सीधा कर दो, इस शत्रु एवं चोर को दूर करो।

भावार्थः–

ईश्वर की पूजा का रहस्य चारों वेदों में है परन्तु विशेष ज्ञान सामवेद में ही दिया गया है। गायत्री मंत्र में देखते हैं कि ईश्वर की स्तुति, उपासना एवं प्रार्थना, यह तीन प्रकार की क्रियाएँ एक साथ हैं। इसी प्रकार जब–जब ईश्वर की पूजा की जाती है, तब–तब यह तीन क्रियायें करनी अनिवार्य हैं तभी ईश्वर की पूजा संपूर्ण होती है। इसी आधार पर हम नित्य संध्या मंत्र में **"विश्वानि देव"** इत्यादि से लेकर **"अग्ने नय सुपथा"** मंत्र तक ईश्वर की स्तुति, उपासना एवं प्रार्थना संपूर्ण करके, पश्चात् अग्निहोत्र कर्म का आरंभ करते हैं। और जब विद्वान गुरु के समक्ष वेदमंत्रों से आहुतियाँ पड़ती हैं तब उस उच्च कोटि के यज्ञ में ईश्वर स्वयं प्रकट होता है और जीव ऐसी पूजा से मोक्ष पद तक को प्राप्त कर लेता है। सामवेद मंत्र 1036 में यज्ञ द्वारा

तीनों लोकों के सुख सब पर बरसाने की बात कही है। और मंत्र 1030 में ऋषि एवं मनुष्यों द्वारा मिलकर किया यह यज्ञ पूर्णरूप से ईश्वर को ही प्राप्त होता है। मंत्र 1429 में ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना जीवात्मा के मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिए की है। क्योंकि रचना में ही जीव यह मनुष्य शरीर प्राप्त करता है और इस मनुष्य शरीर से यज्ञादि शुभ कर्म करके मोक्ष सुख को प्राप्त करता है। ऋग्वेद मंत्र 6/51/7 उपदेश देता है कि हे सज्जन पुरूषों तुम पाप कर्म मत करो और न ही बुराई का संग करो। अन्यथा यह मनुष्य शरीर व्यर्थ ही नष्ट हो जाएगा।

सारांश यह है कि ईश्वरीय वाणी वेद के अनुसार मुख्यतः आज जब हम ईश्वर की पूजा, यज्ञादि शुभ कर्म द्वारा करते हैं तो इसमें कई प्रकार के विघ्न अवश्य उत्पन्न होते हैं। यह विघ्न इस पृथिवी पर भी सतयुग, त्रेता एवं द्वापर युग मे रावण, दुर्योधन एवं कंस आदि वेद–विरोधी राक्षसों के रूप में उभरे थे और आज भी पृथिवी पर मौजूद हैं जिन्हें प्रस्तुत मंत्र में दुराध्यम्, रिपुम् और स्तेन आदि शब्दों के द्वारा ईश्वर ने वर्णन किया है। यह शत्रु दो प्रकार के हैं, एक तो आंतरिक जिसमें काम, क्रोध आदि अनेक चित्त वृत्तियाँ हैं। दूसरा बाहरी शत्रु हैं जो मनुष्य जन्म लेकर भी रावण, शूर्पनखा, कंस, दुर्योधन आदि राक्षस योनि में आते हैं। ऐसे जीव सदा वेद, यज्ञ एवं योगाभ्यास आदि को किसी न किसी तरह नकार देते हैं। जैसे यह लोग कहेंगे कि वेद कठिन हैं, यज्ञ में धुआँ होता है, योगाभ्यास की जरुरत नहीं है, इत्यादि–इत्यादि। परन्तु यह सब कुछ ईश्वरीय वाणी, वेद के विरुद्ध, असत्य एवं दुष्प्रचार है। क्योंकि आज का आम वेद विरोधी संत न तो संस्कृत पढ़ सकता है और फलस्वरूप न ही वह वेद विद्या का अध्ययन करने में समर्थ हो सकता है। अतः वह स्वयं का बनाया हुआ और वेद के पूर्णतः विरुद्ध मार्ग बनाता है जिसके द्वारा जनता में अविद्या फैलती है। इस मंत्र में ईश्वर से यह प्रार्थना की गई है कि ऐसे वेद विरोधी शत्रु एवं चोरों को, हे प्रभु दण्ड देकर सीधा कर दो, जिससे यह शत्रु हमसे सदा दूर रहें। यहाँ मंत्र का छिपा हुआ यह भाव भी है कि ईश्वर ही उन्हें दण्ड दे, साधक कभी किसी से राग–द्वेष न करे। क्योंकि मंत्र में ईश्वर से ही प्रार्थना की गई है, वेदों में वस्तुतः दण्ड देने के दो ही अधिकारी हैं– एक स्वयं परमेश्वर और दूसरा जनता द्वारा नियुक्त किया राजा। इन दोनों को ही वेदों में न्यायकर्त्ता

कहा है। परन्तु दुर्भाग्यवश आज वेदों का ज्ञान क्षीण होने के कारण राजा/नेता अपने कर्त्तव्य को पूर्णतः वेदानुसार नहीं निभा पाते एवं इस प्रकार प्रायः अपराधी छूट ही जाते हैं और गरीबों पर जुल्म बढ़ता जाता है। आप इस प्रार्थना में देखेंगे कि ईश्वर से एवं उतनी ही राजा से प्रार्थना है कि वह दुष्टों को दण्ड दे। परन्तु ऐसे वेदमंत्रों से परिपूर्ण प्रार्थनाएँ जब राजा एवं प्रजा मिलकर यज्ञ में डाली हुई आहुतियों के द्वारा करेंगे ही नहीं, तब न तो ईश्वर, सामवेद मंत्र 984,1007 के अनुसार राजा और प्रजा को शुद्ध बुद्धि देगा और फलस्वरूप न ही राजा/नेता न्यायप्रिय होगा। परन्तु हमें याद रहे कि ईश्वर अवश्य न्याय करता है और दुष्टों को दण्ड देता है तथा सज्जनों की रक्षा करता है। ईश्वर की नजर में न्याय के प्रति राजा–रंक सब बराबर हैं। ऋग्वेद मंत्र 6/50/14 में तभी कहा कि वेदमंत्रों से **"एक पात् अजः"** जिसके द्वारा यह समस्त जगत (एक पाद) उसकी एक अंशमात्र शक्ति से उत्पन्न होता है **(नः श्रृणोतु)** वह ईश्वर हमारी प्रार्थना को सुनें। **"मंत्रः अवन्तु"** और यह वेदमंत्र का मनन हमारी रक्षा करे। भाव यह है कि वह ईश्वर यज्ञ में वेदमंत्रों द्वारा ही प्रार्थनाएँ सुनता है और हमारी रक्षा करता है। यह मंत्र इस बात का प्रमाण है। अतः हम नित्य वेदमंत्रों द्वारा यज्ञ करते रहें, यही ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ पूजा है।

***श्रुष्टयग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते।**
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह।।

(सामवेद मंत्र 106)

(वीर) हे महान बलशाली **(विश्पते)** समस्त प्रजा के स्वामी **(अग्ने)** ईश्वर **(मे)** मेरे **(नवस्य)** नये–नये **(स्तोमस्य)** वेद मंत्रों के पाठ को **(श्रुष्टी)** सुन कर **(मायिनः)** छल कपट वाले शत्रु **(रक्षसः)** वेद विरोधी राक्षसों को **(तपसा)** अपने उग्र तेज द्वारा **(नि)** निश्चयपूर्वक **(दह)** भस्म कर दो।

अर्थः–

हे महान बलशाली, समस्त प्रजा के स्वामी, ईश्वर मेरे नये–नये वेद मंत्रों के पाठ को सुन कर छल कपट वाले शत्रु वेद विरोधी राक्षसों को अपने उग्र तेज द्वारा निश्चयपूर्वक भस्म कर दो।

सामवेद मंत्र 140 में कहा कि हे प्रभु यज्ञ में वेदमंत्रों द्वारा की गई हमारी प्रार्थनाओं को सुनिये। यज्ञ में ईश्वर प्रगट होता है और प्रार्थना सुनकर उसे पूर्ण करता है। सामवेद मंत्र 142 भी बड़ा ही आश्चर्ययुक्त है जिसमें मानों ईश्वर सम्पूर्ण जीवों से प्रश्न कर रहा कि ऐसा कौन है (कः ब्रह्मातम् सपर्यति) जो वेदमंत्रों द्वारा मेरी प्रार्थना करता है। अगले ही मंत्र 143 में भगवान ने स्वयं उत्तर दिया है कि जिसकी वेदाध्ययन एवं यज्ञादि द्वारा शुद्ध बुद्धि हो गई है, वह विद्वान ही यज्ञ द्वारा ईश्वर की पूजा करता है। अतः हम नित्य अग्निहोत्र/ यज्ञ करते रहें। प्रायः जब कोई नया–नया साधक यज्ञ करता है, वेद सुनता है अथवा योगाभ्यास करता है, तब कई वेद–विरोधी शत्रु विघ्न डालने का प्रयास करते हैं। मंत्र में प्रार्थना है कि ईश्वर इन शत्रुओं से हमारी रक्षा करे और इनको भस्म करे। इसमें कामादि शत्रु भी हैं और जीव आलस्य आदि में फँसकर यज्ञ नहीं कर पाता, वेद वाणी नहीं सुन पाता, अतः हम ईश्वर से प्रार्थना करते हुए तथा पुरुष स्वयं भी पुरूषार्थ करके कामादि शत्रुओं एवं बुरी संगत का त्याग करके सदा यज्ञादि शुभ कर्म करने में लगे रहें। इसका फल यह होता है कि एक दिन स्वयं ईश्वर सब प्रकार के शत्रुओं को भस्म कर देता है। इस मंत्र में भी मंत्र 104 की तरह माया शब्द आया है। यह माया प्रकृति के तीन गुण–रज,तम एवं सत्त्व हैं, इन्हीं तीन गुणों से मन, बुद्धि, सब इन्द्रियाँ एवं शरीर बना है। इन्हीं से काम, क्रोध, मद, लोभ अंहकार, छल–कपट, निंदा, द्वेष, चुगली, आलस्य, निद्रा, द्रोह आदि असंख्य विकार उत्पन्न होते हैं। अतः शरीरधारी नर–नारी में कर्मानुसार यह विकार होते हैं। फलस्वरूप इंसान ही इंसान से राग–द्वेष, द्रोह आदि पापयुक्त कर्म करता है। जैसा यजुर्वेद में भी कहा कि ईश्वर तो स्वयं **''शुद्धम् अपाप विद्धम्''** शुद्ध एवं पाप आदि कर्म से परे है। अतः ईश्वर का माया में लिप्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जीवात्मा ही इन प्रकृति के तीन गुणों में आकर्षित होकर अपने शुद्ध चेतन स्वरूप को भूल जाता है। ईश्वर ने प्रकृति द्वारा संसार एवं शरीर रचे है, जड़ प्रकृति भी ईश्वर से भिन्न है क्योंकि ईश्वर चेतन है। जड़ होने के कारण प्रकृति के यह तीन गुण स्वयं किसी पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। चेतन होने के कारण यह जीवात्मा ही स्वयं प्रकृति के तीन गुणों में फँस जाता है। अतः जो कोई यह कहता है कि माया भगवान की शक्ति है, माया हितैषी है अथवा माया

भगवान के बराबर है तो यह मिथ्यावाद है तथा पूर्णतः वेद विरुद्ध एवं अप्रमाणिक है। संपूर्ण वेदों में हम प्रकृति के गुणों के विकारों से, अर्थात् माया से छूटने की प्रार्थना ईश्वर से करते रहते हैं और वेदों में यह प्रार्थनाएँ स्वयं ईश्वर ने बनाई हैं। तब माया हितैषी कैसे हो सकती है। हितैषी तो माया रहित यज्ञादि शुभ कर्म हैं। कई कहते हैं कि भगवान संकल्प करे तो माया का कार्य प्रारंभ हो जाता है और निष्पन्द करे तो माया चुप हो जाती है। तो यहाँ हम यह वेद विचार ग्रहण करें कि ईश्वर संकल्प और विकल्प से परे है। ऐसा कोई वेदमंत्र या योग, सांख्य आदि छः शास्त्र का श्लोक नहीं है जिसमें क्षणमात्र के लिए भी यह कहा हो कि ईश्वर में संकल्प–विकल्प होते हैं। श्वेताश्वरोपनिषद् श्लोक 6/8 में स्पष्ट कहा **"स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया"** अर्थात् ईश्वर के बराबर न कोई था, न है और न होगा। अतः यह कहना भी मिथ्यावाद हैं कि माया भगवान के बराबर है। और ईश्वर का ज्ञान, बल एवं क्रिया सब स्वाभाविक है अर्थात् बिजली के इनवर्टर(Invertor) की भांति बिना संकल्प–विकल्प सृष्टि रचना, पालना एवं संहार आदि अनंत कर्म स्वाभाविक अर्थात, नियत समय पर अपने आप होते हैं। इसके लिए ईश्वर को संकल्प–विकल्प की आवश्यकता नहीं होती। यह भी मिथ्यावाद है कि ईश्वर पर थोड़ी देर के लिए माया हावी हो जाती है और ईश्वर भ्रम में पड़ जाता है। ऐसा होने के लिए माया को चेतन होना पड़ेगा और ईश्वर को जीवात्मा की तरह मूर्ख बनना पड़ेगा, जो कि पूर्णतः वेद–विरुद्ध एवं असंभव है। इन पापयुक्त भाषणों से बचकर केवल एक सृष्टि रचयिता निराकार ब्रह्म की यज्ञ, वेदाध्ययन एवं योगाभ्यास आदि शुभ कर्मों द्वारा उपासना करें। कई कहते हैं कि ईश्वर यदि केवल निराकार ही होता तो उसे कोई जान नहीं पाता। यह भी मिथ्यावाद है। क्योंकि आज भी बिना देखे केवल किसी के गुण सुनने मात्र से हम इस प्राणी की छवि अपने हृदय में उतार लेते हैं। जीवात्मा भी किसी ने नहीं देखी परन्तु जीवात्मा के गुण जानकर विद्वान उसके विषय में सब कुछ बता देते हैं। अतः वेद विद्यानुसार जब जीव विद्वानों से वेदमन्त्र सुनता है, यज्ञ करता है और यज्ञ में वैदिक प्रवचनों द्वारा ईश्वर के स्वरुप को सुनता है तब ईश्वर की छवि स्वयं उसके हृदय में अंकित हो जाती है और यज्ञ, योगाभ्यास, आदि द्वारा वह ईश्वर योगियों के हृदय में प्रकट हो जाता है। क्या मन को आज तक किसी ने देखा है अर्थात् नहीं

देखा, परन्तु वेदों से सुन–सुन कर हम गूढ़ावस्था से मन के गुण एवं मन को जान जाते हैं। उस–2 श्लोक, मंत्र अथवा, कथा आदि का ही व्याख्यान करते हैं। यही सब कुछ ईश्वर के प्रति भी है।

आज प्रायः वेद विरोधी सन्तों का यह नियम बन गया है कि जो–जो उन्हें अपने को गुरु महाराज सिद्ध करने में और जनता का धन लूटने में सामग्री रास आती है, उस–उस श्लोक, मंत्र अथवा कथा आदि का ही व्याख्यान करते हैं, ईश्वर विशेष का नहीं करते।

उदाहरणार्थ गीता श्लोक 10/25 में कहा–

"महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।"

इसका अर्थ है:–

हे अर्जुन महर्षियों में मैं भृगु, "**गिराम्**"वेदवाणियों में से "**एकं अक्षरं**" एक अक्षर ओंकार, यज्ञों में से जप यज्ञ और "**स्थावर**" स्थिर रहने वालों में हिमालय। इसी दसवें अध्याय में "**वेदानाम् सामवेदः अस्मि**" इत्यादि अन्य अनेक विभूतियों का भी वर्णन है और पच्चीसवें श्लोक में वेदों के ज्ञाता महर्षि भृगु का भी वर्णन है। वेदों में "**गिराः**" शब्द वेदवाणी के लिए आता है। अतः वेदवाणी एवं ईश्वर के नाम ओ३म् का भी वर्णन है। और अक्षर शब्द से गीता के आठवें अध्याय में कहा अक्षरं नक्षरं अर्थात् अक्षर जिसका कभी नाश नहीं होता अतः अविनाशी भाव का भी वर्णन है परन्तु वेदवाणी एवं ऋषि मुनियों को परे फेंककर वेद विरोधी संतों ने केवल यज्ञों में मैं जप यज्ञ हूँ, इस जप का ही भाव अपने कहे सत्संगों में वर्णन किया है और यज्ञ एवं वेदों को कठिन कहकर छोड़ देने का आह्वान किया है। वस्तुतः यजुर्वेद मंत्र 31/1 एवं इसके अगले मंत्रों में ईश्वर की विभूतियों का वर्णन है। वहाँ कहा है–

"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिम्सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गुलम्।।"

(सहस्रशीर्षा) ईश्वर में यह सारा संसार समाया हुआ है। सब संसार के नर–नारी, पशु–पक्षियों आदि के असंख्य सिर ईश्वर में ही हैं, अतः यहाँ ईश्वर को सहसशीर्षा अर्थात् हजारों सिर वाला कहा है, परन्तु ईश्वर का

सिर कोई नहीं होता। इसी प्रकार **(सहस्राक्षः)** हजारों आँखों वाला एवं **(सहस्रपात)** हजारों पैरों वाला ईश्वर कहा गया है। अर्थात् यह जीवों के असंख्य आँखें एवं पैर, सब ईश्वर के अंदर स्थित हैं, परन्तु **(सः)** स्वयं ईश्वर **(सर्वतः भूमिम्)** सब स्थान से तीनों लोकों को **(स्पृत्वा)** व्याप्त करके सर्वव्यापक **(दशाङ्गुलम्)** पाँच भूत और पाँच सूक्ष्म भूत इन दस अंगों वाले संसार को **(अति अतिष्ठत)** लांघकर स्थित हैं अर्थात् तीनों लोकों में भी है और इन तीनों लोकों से अलग भी है। यहाँ ईश्वर के स्वरूप का वर्णन यह है कि वह सर्वव्यापक आदि अनेक गुणों से युक्त है। परन्तु सर्वशक्तिमान होने के कारण उसे सिर, आँख, कान, नाक, पैर, इत्यादि की आवश्यकता नहीं। यह अंग तो जीवात्मा को चाहिए। इसी अध्याय के मंत्र पाँ.च में कहा कि उस पूर्ण परमेश्वर से प्रकृति के द्वारा इस संसार की रचना हुई है परन्तु परमेश्वर, प्रकृति, संसार तथा जीव, इन तीनों से अलग होकर इन तीनों तत्त्वों में व्यापक है। आगे मंत्र सात में कहा कि इसी परमेश्वर से चारों वेद उत्पन्न हुए। परन्तु वेद उत्पन्न होने में प्रकृति सम्मिलित नहीं है। उससे आगे मंत्र दस में प्रश्न किया कि ऐसे पूर्ण परमेश्वर की रची हुई सृष्टि में **''मुखम् किम् आसीत्''** अर्थात् मुख के तुल्य श्रेष्ठ कौन है तो अगले मंत्र ग्यारह में उत्तर दिया, **''ब्राह्मणः मुखम् आसीत्''** यहाँ ब्राह्मण शब्द का अर्थ चारो वेद एवं वेदों में वर्णित ईश्वर का ज्ञाता विद्वान कहा गया है। और ऐसा ही विद्वान मुख के समान उत्तम कहा गया है। यही विद्वान ऋषि समाज को संपूर्ण विद्या दान करता है। अतः मंत्र का यह भाव नहीं है कि ईश्वर का मुख होता है। वेद विद्या का ज्ञाता मुख के समान उत्तम एवं पूजनीय कहा गया है। सारांश यह है कि हम वेद, शास्त्र, उपनिषद्, गीता, रामायण आदि की कतरनें अपने स्वार्थ के लिए एकत्र न करें। संपूर्ण वेद विद्या को ही समझकर समाज में विद्या का प्रकाश विद्वान करते आए हैं। अब यज्ञों में मैं जप यज्ञ हूँ, इसका अर्थ यह नहीं है कि इसी श्लोक में भी कहे ऋषि भृगु वेद वाणी एवं यज्ञ का त्याग कर दें और केवल अपने स्वार्थ के लिए झूठ कहते फिरें कि श्रीकृष्ण महाराज ने केवल जप के लिए ही कह दिया है। और ईश्वर न तो ऋषियों में है और न ही यज्ञ में है, ऐसा कहना अज्ञान, स्वार्थ एवं झूठ को बढ़ावा देना मात्र है। क्योंकि गीता श्लोक 3/15 में स्वयं श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि मैं यज्ञ में प्रतिष्ठित हूँ और इसी ऊपर कहे

श्लोक में कह रहे हैं कि मैं भृगु ऋषि में प्रकट हूँ इत्यादि–इत्यादि। इसी प्रकार कई आज के संत प्रायः कहते हैं कि तुलसी ने कहाः–

"कलियुग केवल नाम आधारा"

अर्थात् कलयुग में और कुछ मत करो, केवल नाम का जाप ही कर के तर जाओ। तब तो प्रत्येक प्राणी को संतों से नाम लेकर घर में बैठकर ही जाप करना चाहिए, उनके सत्संग सुनने कभी न जाएँ, परन्तु ऐसा कहीं देखा नहीं। दूसरा यह भी विद्या की कतरन है, तुलसी ने तो यह भी कहाः–

"जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म
सुभासुभ लाइ।"
[उत्तरकाण्ड दो० 117 (क)]

अर्थात् योगाभ्यास द्वारा जो ज्ञान–अग्नि प्रकट होती है, उस योग अग्नि से ही शुभ–अशुभ कर्मों का नाश होता है। तुलसी ने कहाः–

"श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।।"
[उत्तरकाण्ड दो० 100 (ख)]

श्रुति संम्मत अर्थात् वेदों के अनुसार बताई ईश्वर–भक्ति मार्ग जो वैराग्य एवं विवेक से परिपूर्ण है,ऐसे सनातन मार्ग पर मोह में फंसा प्राणी नहीं चलता और विपरीत में स्वयं के बनाए मत–मतान्तरों की कल्पना करता है। अतः यह सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी आदि अंनेक विभूतियाँ परमात्मा के अनंत गुणों में से कुछ एक का ही दर्शन कराती हैं क्योंकि इन सभी विभूतियों में स्वयं अनंत गुणों वाला परमेश्वर विराजमान है, परन्तु यह विभूतियाँ ईश्वर नहीं है। अतः केवल निराकार ब्रह्म की वेदानुसार पूजा की जाती है और यज्ञ ईश्वर की सर्वोत्तम पूजा कही गई है।

सारांश यह हुआ कि पूर्व के ऋषि, मुनि समाज को जहाँ सम्पूर्ण विद्या का ज्ञान देते थे, और जनता सर्वगुणसंपन्न थी जैसा कि ऊपर वाल्मीकि रामायण, तुलसी रामायण, एवं महाभारत में सुखों का वर्णन किया गया है। परन्तु आज प्रायः **कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमति ने कुनवा जोड़ा।** अर्थात् कुछ कतरन गीता से, कुछ रामायण से, कुछ वेद से, कुछ

कथाएँ कहीं–कहीं से ली और एक भाषण तैयार करके उसका नाम सत्संग रख दिया, जो कि आत्मघाती सिद्ध हो रहा है। इसे अथर्ववेद मंत्र 12/5/40 में चुरा ली गई कहा है जो कि पाप है। और चुरा ली गई का अर्थ है कि जैसे एक पूरे कपड़े से चूहा थोड़ी सी कतरन काट कर ले गया हो और बाकी कपड़ा वहीं छोड़ गया हो। ऐसी कतरन करने वाले के विषय में मंत्र में ईश्वर ने कहा कि मैं ऐसे छल करने वालों को पैर से रौंद–रौंदकर मार देता हूँ, इत्यादि। (देखें सम्पूर्ण अथर्ववेद काण्ड 12)

अतः हम श्रद्धापूर्वक नित्य यज्ञ/हवन करके मंत्र में कहे माया आदि विकारों को नष्ट करें।

***यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयम् कृधि।**
मघवन् छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि।।

(सामवेद मन्त्र 274)

(इन्द्र) हे परमेश्वर व राजन् हम **(यतः)** जिससे **(भयामहे)** भय मानते हैं **(ततः)** उससे **(नः)** हमें (अभयम्) अभय **(कृधि)** कर दे **(मघवन्)** महान, पूजनीय ईश्वर **(छग्धि)** शक्तिवान करो **(तव)** आपका **(तत्)** वह अभयदान **(नः)** हमारी **(ऊतये)** रक्षा के लिए हो आप **(द्विषः)** हमारे शत्रुओं को **(वि जहि)** हनन् कर दें **(मृधः)** हिसां वा युद्धों को भी **(वि)** हमसे दूर करें।

अर्थः–

हे परमेश्वर व राजन् हम जिससे भय मानते हैं उससे हमें अभय कर दें। महान पूजनीय ईश्वर, हमें शक्तिवान करो, आपका वह अभयदान हमारी रक्षा के लिए हो। आप हमारे शत्रुओं को हनन् कर दें। हिसां व युद्धों को भी हमसे दूर करें।

भावार्थः–

सतयुग, त्रेता, एवं द्वापर का इतिहास वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत में दर्शनीय है। यह वैदिक काल था। वेदानुसार प्रजा का पालन, वेदों के ज्ञाता, व्यास मुनि जैसों की बुद्धि एवं क्षिप्त, विक्षिप्त, हरिश्चँद्र, दशरथ, श्रीराम एवं युधिष्ठिर महाराज जैसे राजाओं का क्षत्रिय बल, सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था। ऋषि एवं राजा दोनों ही गुरुकुल परंपरा में

वेदों का ज्ञान प्राप्त किए हुए होते थे, जिसका आज अभाव है। फलस्वरूप जिस प्रकार सूर्योदय होने पर सर्वत्र अंधकार का नाश हो जाता है–अभाव हो जाता है, उसी प्रकार पिछले तीनों युगों में, पृथ्वी से सम्पूर्ण अज्ञान का नाश था। या तो पूर्णतः मनुष्य वेद विरुद्ध रावण, कंस की तरह असुर होता था अथवा शेष प्रजा अपने राजा सहित वेदानुसार धर्मयुक्त कर्म करने वाली होती थी। जहाँ इस बात का प्रमाण वाल्मीकिजी ने सर्ग चार, बालकाण्ड में, वेदों के ज्ञाता, महाराज दशरथ के राज्य का वर्णन करते हुए कहा कि जनता में कोई कामी, क्रोधी लालची और कंजूस नहीं था। और सभी गृहस्थी वेद के ज्ञाता, महर्षियों के समान होते थे तथा कोई ऐसा घर नहीं था जहाँ यज्ञ न होता हो, प्रजा सब सुखों से भरपूर थी। वहीं तुलसीदासजी ने भी वेदानुकूल श्रीराम राज्य का वर्णन करते हुए कहाः–

"दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।

अर्थात् राजा दशरथ की तरह, राम राज्य में भी दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख किसी भी व्यक्ति को नहीं सताते थे। क्योंकि सब मनुष्य वेदानुसार कर्म करते हुए मर्यादा में रहते थे, अपने धर्म का पालन करते थे और परस्पर प्रेम करते थे, भाईचारा था। तो इसी आधार पर हमें यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि आज के प्रायः वेद विरोधी महात्माओं ने वेदों को कठिन कह–कहकर और यज्ञ की निन्दा कर करके पूर्ण पृथ्वी से इन राम राज्य के भाईचारे आदि गुणों को समाप्त प्रायः कर दिया है। वेदानुसार यह दो ही शक्ति–वेद मन्त्र का ज्ञाता, ऋषि एवं वेदों का ज्ञाता राजऋषि, दोनों मिलकर प्रजा का न्यायपूर्वक पालन करते हैं। इन दोनों शक्तियों के अभाव में न्याय केवल ईश्वर पर ही छोड़ना पड़ता है, क्योंकि ईश्वर जो परम सत्ता है, उसका कभी अभाव नहीं होता। इसी भावना से ऊपर कहे सामवेद के मन्त्र में यह प्रार्थना ईश्वर एवं राजा, दोनों से की गई है कि यह दोनों शक्तियाँ, हम प्रजा के भय को पूर्णतः समाप्त कर दें। क्योंकि हे ईश्वर! आप स्वयं निर्भय हैं तो हमें भी सब तरफ से अभय दान करें। हमारे काम आदि शत्रु अथवा मनुष्य आदि शत्रु, उन सबको नष्ट कर दें। सबसे उत्तम प्रार्थना तो ईश्वर से ही की जाती है, राजा भी ईश्वर से ही प्रार्थना करता है, परन्तु

ईश्वर ने राजा को भी प्रजा की रक्षा के लिए अधिकार दिए हैं। जैसा कि यजुर्वेद मन्त्र 11/14–15 में कहा कि राजा सबका रक्षक एवं धार्मिक व्यक्ति हो। वह अपनी सेना द्वारा राज्य को उपद्रवों से रहित करे। यजुर्वेद मन्त्र 10/29–30 एवं 33 में कहा कि राजा पक्षपात रहित और प्रजा का पिता के समान रक्षा करने वाला एवं दुष्टों से श्रेष्ठों की रक्षा करने वाला हो। मन्त्र 11/77–78 में कहा, राजा गऊ रक्षक एवं चोर आदि दुष्ट जनों का नाश करने वाला हो इत्यादि। मूलतः जब वेदविद्या की हानि हो जाती है और राजा/नेता भ्रष्टाचार आदिको बढ़ावा देने वाले हो जाते हैं, तब न्याय के लिए सज्जन नर–नारी को केवल ईश्वर का ही सहारा होता है। इसी संदर्भ में यह प्रार्थना की गई है। वस्तुतः ऐसे मन्त्रों की प्राचीनकाल में जब आहुतियाँ डलती रहती थीं, तब अथर्ववेद काण्ड 5, सम्पूर्ण सूक्त 10 ने कहा कि यज्ञ में ईश्वर प्रतिष्ठित है एवं हमारा रक्षक है। इसी प्रकार सामवेद मन्त्र 881तदानुसार गीता श्लोक 3/15 के अनुसार ईश्वर यज्ञ में प्रतिष्ठित है, अवश्य सुनता है, रक्षा करता है एवं यह आहुतियाँ ही सामवेद मन्त्र 48 के अनुसार यज्ञ करने वाले नर–नारी की, मनुष्य एवं कामादि शत्रुओं के विरुद्ध, स्वयं भी रक्षा कवच बन जाती हैं। अतः ईश्वर की आज्ञानुसार प्रत्येक गृहस्थ के नर–नारी को नित्य यज्ञ–हवन करना चाहिए। कितना आश्चर्य है कि जो यज्ञ हमारे परिवार, हमारे बच्चों, हमारी रक्षा करता है, उसे ही आज वेद विरोधी सन्तों ने जनता से छुड़वाकर, जनता को भयभीत करके दुःखों के सागर में डुबो दिया है। फलस्वरूप ही असंख्य परेशानियाँ, मुकद्दमेबाजी, नारी अपमान, तलाक, दहेज जैसी कुप्रथा, बीमारियाँ एवं अल्पायु में अत्याचार एवं मृत्यु आदि असंख्य समस्याएँ आज विषधर बनकर मानव को डस रही हैं। अतः आज जीव को पुनः चेतने की आवश्यकता है। हम ईश्वर की आज्ञानुसार, गृहस्थ के शुभ कर्म करते हुए नित्य यज्ञ–हवन करें जिससे हमारे समस्त परिवार की सब प्रकार से रक्षा हो।

***कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्।**
कदा नः शुश्रुवद्गिरः इन्द्रो अङ्ग।।

(सामवेद मंत्र 1343)

(अंग) हे प्रिय **(इन्द्रः)** परमेश्वर **(कदा)** कब **(नः)** हमारी **(गिरः)** यज्ञ

में वेद वाणियों द्वारा की गई प्रार्थनाओं को **(सुश्रवत्)** सुनोगे और फलस्वरूप **(कदा)** कब **(अराधसम्)** यज्ञ न करने वाले **(मर्तम्)** मनुष्य को **(पदा)** पैरों के द्वारा **(क्षुम्पम्)** वर्षा ऋतु में उत्पन्न खुम्ब के **(इव)** समान **(स्फुरत)** नष्ट कर दोगे।

अर्थः–

हे प्रिय! परमेश्वर कब हमारी यज्ञ में वेद–वाणियों द्वारा की गई प्रार्थनाओं को सुनोगे और फलस्वरूप कब, यज्ञ न करने वाले मनुष्य को पैरों के द्वारा, वर्षा ऋतु में उत्पन्न खुम्ब के समान, नष्ट कर दोगे।

भावार्थः–

किसी भी सत्य को स्थापित करने के लिए संसार में ईश्वर से उत्पन्न चारों वेदों में कही विद्या को ही स्वतः प्रमाण माना गया है। अर्थात् जो–जो विद्या, पदार्थ अथवा ज्ञान आदि वेदों में है, वह–वह सत्य है और जो नहीं है, लेकिन उसका वर्णन संसार में किया जा रहा है, वह असत्य है। प्रायः आज कई संत भक्ति आदि के विषय में वह बातें करते हैं जिनका वेदों में नामोनिशान तक नहीं है। कई संत तो वेदों में कहे यज्ञ, वेदाध्ययन, एवं योगाभ्यास आदि तक का भी खण्डन करते हुए कह देते हैं कि इनकी आवश्यकता नहीं हैं। मनुस्मृति श्लोक 2/11 ने ऐसे मनुष्यों के लिए कह ही दिया है– **''नास्तिको वेदनिन्दकः''** अर्थात् वेद विद्या की निंदा करने वाला मनुष्य नास्तिक है चाहे वह कितना ही तिलकादि लगाकर चोला आदि पहनकर, नाच–गा कर भक्ति की दुहाइयाँ देता हो। इसी विषय में सामवेद मंत्र 1342 भी कहता है कि हे प्रभु **''बहुभ्यः''** बहुतों में से **''यः चित्''** विरला ही कोई **(सुतावान्)** यज्ञशील और श्रद्धावान होकर **''त्वा विवासति''** तेरी उपासना करता है। भगवद् गीता श्लोक 7/3 में भी कुछ ऐसा ही कहा है– **''मनुष्याणाम् सहस्रेशु कश्चित् यतति''** अर्थात् हजारों में से कोई विरला एक वेद अथवा योग विद्या को पाने का प्रयत्न करता है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में श्री गुरु नानक देव साहब ने भी कहा है कि–

''कोट मधे को विरला सेवक, होर सबे व्यवहारी।''

इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि प्रायः वेद विरोधी आज के गुरुओं द्वारा भक्ति तथा कथा आदि द्वारा जो शोर मचाया जा रहा है और सुरीली–सुरीली, लुभावनी बातों द्वारा भीड़ की भीड़ इकट्ठी की जा रही है,

यह कहीं जनता के पैसे ठगने का षड़यंत्र तो नहीं है। इस मिथ्यावादी एवं ढोंग युक्त विषय के आधार पर ही शायद ईश्वर ने इस मंत्र में हम प्राणियों को प्रार्थना करने का आह्वान किया है कि हे मनुष्यों तुम परमेश्वर से यज्ञ में आहुति डालते हुए यह प्रार्थना करो कि हे ईश्वर आप हमारी प्रार्थना कब सुनोगे और फलस्वरूप कब इन वेद एवं यज्ञ विरोधियों को पैरों से कुचलकर इस प्रकार नष्ट कर दोगे जिस प्रकार वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाले खुम्ब को कोई सरलता से पैर द्वारा नष्ट कर देता है। अथवा जिस प्रकार बरसों पानी में पड़ी लकड़ी इस प्रकार गल जाती है कि उसके ऊपर जरा सा पैर पड़ने पर ही वह लकड़ी मिट्टी के कच्चे ढेले की तरह चूर–चूर हो जाती है। यजुर्वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद में भी कई स्थानों में ईश्वर ने यज्ञ विरोधी मनुष्यों को दण्ड देने की बात कही हैं मंत्र का यह भाव नहीं है कि हम किसी से द्रोह करें। यजुर्वेद मंत्र 7/48 के अनुसार ईश्वर का तो यह नियम है कि अच्छा या बुरा कर्म जीवात्मा अपने शरीर द्वारा करता है और परमेश्वर वैसा ही अच्छा या बुरा फल मनुष्य को देता है। हाँ, यज्ञ में ऐसे–ऐसे मंत्रों की आहुति डालने का आह्वान स्वयं ईश्वर ने किया है जिससे दुष्ट वृत्ति का नाश हो और शुभ कर्मों का उदय हो। अतः हम ईश्वर की आज्ञा में रहते हुए सदा यज्ञ करके पृथिवी को पुण्यवान बनाने में लगे रहें। यज्ञ द्वारा समस्त प्राणियों का कल्याण होता है।

***त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम्।**
सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा।।

(सामवेद मन्त्र 1434)

हे परमेश्वर **(त्वं)** आप **(हि)** निश्चय ही **(शूरः)** शूरवीर हो **(सनिता)** दाता हो, आप ही **(मनुषः)** मनुष्य के **(रथम्)** शरीर रुपी रथ को पुरूषार्थ एवं प्रगति में लगे रहने के लिये **(चोदयः)** जीवात्मा को प्रेरणा दो। **(सहावान्)** हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर आप **(अव्रतम्)** व्रतहीन, दुराचारी और **(दस्युम्)** डाकू, अधर्मी को **(ओषः)** जला डालो, इस प्रकार जलाओ **(न)** जैसे **(शोचिषा)** प्रदीप्त हुई अग्नि की लपटों से **(पात्रम्)** लकड़ी का बना पात्र **(बर्तन)** जलकर राख हो जाता है।

अर्थः–

हे परमेश्वर! आप निश्चय ही शूरवीर हो, दाता हो, आप ही मनुष्य के शरीर रुपी रथ को पुरूषार्थ एवं प्रगति में लगे रहने के लिए, जीवात्मा को प्रेरणा दो। हे सर्वशक्तिमान ईश्वर! आप व्रतहीन, दुराचारी और डाकू, अधर्मी को जला डालो, इस प्रकार जलाओ जैसे प्रदीप्त हुई अग्नि की लपटों से लकड़ी का बना पात्र जलकर राख हो जाता है।

भावार्थ:–

सृष्टि रचना के समय से ही देवता और असुरों का संग्राम होता आया है। ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 129–130, ईश्वर द्वारा सृष्टि रचना क्रम का ज्ञान देता है। जब पिछली सृष्टि प्रलय में समाप्त हो गई होती है तब दीर्घ काल तक कोई रचना नहीं होती और इस समय यह समस्त विश्व, जो जड़–चेतन पदार्थों से पूर्ण दृष्टिगोचर हो रहा है, यह कुछ भी नहीं होता। अतः पिछली सृष्टि के मनुष्य अथवा विद्वान पशु–पक्षी सभी शरीर त्याग चुके होते हैं। पुनः ईश्वर जो सृष्टि उत्पन्न करने का निमित्तोपदान कारण है, उसकी शक्ति प्रकृति में कार्य शुरू करती है और संसार रचना प्रारम्भ हो जाती है। स्वाभाविक है कि उस समय अमैथुनी सृष्टि ही उत्पन्न होती है और उस समय कोई वेद अथवा योग विद्या का ज्ञाता, विद्वान भी नहीं होता और गुरु के बिना ज्ञान होता नहीं। अतः यजुर्वेद मन्त्र 31/7 एवं अथर्ववेद काण्ड 4 में समझाया गया है कि ईश्वर हमारे पूर्वजों का प्रथम गुरु है जिससे चारो वेदों का ज्ञान निकला एवं सृष्टि रचना के आरम्भ में चार ऋषियों के हृदय में प्रकट हुआ। वह ज्ञान ऋषियों ने आगे श्रद्धालुओं को सुनाना प्रारम्भ किया था परन्तु मनुस्मृति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जब तक यह ज्ञान पूर्ण रूप से नहीं फैल पाया था तब तक पृथ्वी पर वेद का ज्ञान न होने के कारण यज्ञ कर्म एवं उपदेश के अभाव से पृथ्वी पर आसुरी वृत्तियाँ बढ़ चुकी थीं। मनुष्य आपस में लड़ते–झगड़ते, चोरी–डकैती करते एवं विषय लोलुप्त आदि विकारों में डूब गए थे। मनुस्मृति कहती है कि अव्यवस्था से परेशान होकर प्राणी समस्याओं का समाधान करने हेतु, मनु भगवान के पास प्रार्थना करने पहुँचे। मनु भगवान जो चारों वेदों के ज्ञाता थे, उन्होंने सृष्टि व्यवस्था के लिए, प्रजा को वेद की आज्ञा सुनाई कि प्रजा को नियंत्रित करने के लिए, राजा की आवश्यकता है और इस प्रकार प्रजा द्वारा राजा का चयन हुआ और पृथ्वी के प्रथम चक्रवर्ती राजा, भगवान मनु

हुए और दुष्टों को दण्ड देकर, वेदों का प्रचार करके, सज्जनों का आदर करके, मनु भगवान ने प्रजा में पृथ्वी पर सुख–शांति स्थापित की। इस इतिहास को कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना ही है कि बिना वेद के ज्ञान के, सृष्टि के आरम्भ में भी देव और असुर संग्राम था जो मनु भगवान ने वेद विद्या द्वारा समाप्त किया। पुनः त्रेता में रावण जैसे, द्वापर में कंस एवं दुर्योधन सरीखे वेद विरोधी राक्षस हुए जिन्हें श्रीराम एवं श्रीकृष्ण ने दण्ड दिया और शांति स्थापित की। इस वेद विरोधी ज्वाला से कलयुग भी नहीं बच पाया है और प्रायः आज के कई सन्त–साधु, वेद विरोधी बातों से जनता को गुमराह करके, संसार का सर्वश्रेष्ठ शुभ कर्म यज्ञ, योगाभ्यास आदि छुड़ाकर अंधविश्वास, आडम्बर एवं थोथे कर्मकाण्डों का प्रचार करके, दोनों हाथों से धन बटोर रहे हैं।

ऊपर कहे ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 129 में जैसा कहा है कि सृष्टि रचना के आरम्भ में चेतन परमेश्वर व जीवात्माएँ तथा तीसरा तत्त्व जिससे सृष्टि की रचना होती है, वह प्रकृति तत्त्व मौजूद होता है। इसी सूक्त के मन्त्र 5 में स्पष्ट किया है कि यह चेतन जीवात्माएँ नई सृष्टि में, अपने पिछले कर्मों के अनुसार, परमेश्वर की व्यवस्था में शरीर धारण करती हैं। जीवात्मा अनादि, जन्म–मृत्यु से रहित, अविनाशी तत्त्व है। अतः नई सृष्टि में यजुर्वेद मन्त्र 40/3 के अनुसार भी असुर वृत्ति वाले मुनष्य एवं पशु–पक्षी शरीर धारण करते हैं। यही कारण है कि इस सृष्टि में भी, सृष्टि क्रे आरम्भ से ही असुर वृत्तियाँ भी पनपती रही हैं। और वेदज्ञ विद्वान की कृपा के बिना असुर वृत्तियाँ समाप्त नहीं होती। ईश्वर तीनों कालों का द्रष्टा है और पिछली सृष्टि का भी द्रष्टा है। ईश्वर से उत्पन्न चारों वेद, सृष्टि का संविधान हैं और ईश्वर ने वेदों में मनुष्य को वेदानुकूल कर्म करने की आज्ञा दी है। वेद विरुद्ध मनुष्यों को, मनु, दशरथ, राम जैसे राजा और ऐसे राजाओं के अभाव में स्वयं ईश्वर, वेद विरोधी राजा एवं प्रजा, दोनों को दण्ड देता है।

प्रस्तुत मन्त्रों एवं अन्यत्र भी वेदमन्त्रों में ईश्वर का यही वेद विरोधियों को दण्ड देने का सिद्धान्त दर्शाया गया है। ऊपर कहे इस मन्त्र में भी "शूरः" एवं "सनिता" शब्द का भाव है कि संसार में जितने भी भीष्म आदि जैसे अनेक शूरवीर हुए हैं अथवा सम्पूर्ण विश्व भी आज भीष्म, अर्जुन, भीम के समान शूरवीर हो जाए तब भी सम्पूर्ण विश्व के योद्धा सूर्य की दहकती

ज्वाला के सामने, एक तिनके की अग्नि के समान भी बराबरी नहीं कर सकते अर्थात् संसार के सब शूरवीरों की शक्ति ईश्वर की शक्ति के सामने तृण मात्र भी नहीं है। तो यही शूरवीर ईश्वर, इस मन्त्र में यह भाव प्रकट कर रहा है कि जो मनुष्य किसी भी युग में (अव्रतम्) व्रतहीन हैं, व्रत का अर्थ यहाँ वेदानुकूल पुरूषार्थ द्वारा कर्म न करने वाले आलसी एवं कर्महीन हैं, उन्हें ईश्वर दहकती (प्रचण्ड) अग्नि में गिराकर, जिस प्रकार लकड़ी की छोटी सी बनी हुई कोई वस्तु (पात्रम्) क्षण भर में जल कर राख हो जाती है। इसी प्रकार यह 'अव्रतम् संयमहीन, कर्महीन प्राणी ईश्वर की शक्ति के आगे क्षण भर में अपने ही बुरे कर्मों द्वारा जल कर राख हो जाता है अर्थात् नष्ट हो जाता है अर्थात् दुखों से ग्रस्त हुआ बुरी मौत मर कर नरकगामी हो जाता है। मन्त्रानुसार यही दण्डनीय फल (दस्युम्) अर्थात् डाकु, जो दूसरों के ध ान का बलपूर्वक हरण करते हैं, भ्रष्टाचारी नेता अथवा प्रजा, हिसंक आदि अनेक प्रकार के दुराचारियों को ईश्वर प्रदान करता है। सारांश में यह कहा जाए तो अनुचित न होगा कि वेद आज्ञा को मनु भगवान, दशरथ, युधिष्ठिर आदि असंख्य राजाओ ने पिछले तीनों युगों में, उस समय के वेद वक्ता ऋषियों की वैदिक प्रेरणा द्वारा प्रजा को न्याय दिलाकर उनमें सुख–शांति आदि अनेक गुणों की स्थापना करके सम्पूर्ण पृथ्वी को अलंकृत कर दिया था। अतः जब तक पुनः ऐसे राजऋषि एवं संदीपन, गुरू वसिष्ठ एंव व्यास ऋषि जैसे वेदों के ज्ञाता ऋषि, प्रजा का पालन नहीं करेंगे तब तक भारत भूमि पर यज्ञ, योगाभ्यास ब्रह्मचर्य एवं सम्पूर्ण विद्या का प्रसार एवं ज्ञान प्राप्त करना असम्भव प्रायः ही होगा अतः प्रत्येक भारतवासी को पुनः देश एवं विश्व में वेद विद्या के प्रचार का डंका बजाने का संकल्प लेना होगा जिससे पुनः राम राज्य की स्थापना हो सके। यजुर्वेद मन्त्र 6/11 ने पहले ही कहा है कि वेद विद्या के लिए हे मनुष्य! तू **''यज्ञे यज्ञपतिम् धाः''** यज्ञ में यज्ञ की रक्षा करने वाले को स्थिर करो। अर्थात् यज्ञमान और विद्वान दोनों मिलकर यज्ञ करें। जिससे शुद्ध जलवायु प्राप्त हो, निरोगता हो तथा सबकी कामनाएँ पूर्ण हों।

***अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।**
विश्वा च नो जरितन्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः।।

(सामवेद मन्त्र–1458)

(सत्पते) हे सत्य के पालन करने वाले **(इन्द्रः)** परमेश्वर आप **(नः)** हमारी **(अद्य अद्य)** आज आज **(च)** और **(श्वः श्वः)** कल कल **(च)** तथा **(परे)** परसों और **(विश्वा अहा)** उनसे अगले आने वाले सब दिनों में भी **(त्रास्व)** रक्षा करो **(च)** और **(नः)** हम सब **(जरितेन्)** वेद मन्त्रों से स्तुति करने वालों की **(दिवा)** दिन **(च)** और **(नक्तम्)** रात्रि में भी **(रक्षिषः)** रक्षा करो।

अर्थ :–

हे सत्य के पालन करने वाले परमेश्वर, आप हमारी आज–आज और कल–कल तथा परसों और उनसे अगले आने वाले सब दिनों में भी रक्षा करो और हम सब वेद मन्त्रों से स्तुति करने वालों की दिन और रात्रि में भी रक्षा करो।

भावार्थ :–

सामवेद उपासना (पूजा) काण्ड है। ईश्वर की उपासना, ईश्वर ने मन्त्रों द्वारा ही कही है। सामवेद ने कहा है कि पूजा के समय ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना, तीनों एक साथ होनी चाहिए और वेदमन्त्रों से होनी चाहिए।। यजुर्वेद मन्त्र 3/11, सामवेद मन्त्र 1379 एवं ऋग्वेद मन्त्र 1/74/1,तीनों ही जगह, एक ही मन्त्र में कहा गया है कि **''अग्नये मन्त्रम् वोचेम''** अर्थात् ईश्वर की पूजा के लिए सर्वदा **''मन्त्रम्''** वेद मन्त्रों का ही **''वोचेग''** उच्चारण करें। अर्थात् यज्ञ के आयोजन द्वारा, वेद मन्त्रों द्वारा ही ईश्वर की स्तुति–पूजा–प्रार्थना आदि शुभ कर्म करें। इस अनादि शुभ कर्म को ही वेद ने ब्रह्मयज्ञ एवं देवयज्ञ कहा है। तथा इन तीनों ही वेदों के मन्त्रों ने इसे ''अध वरं'' हिंसा रहित, ईश्वर की पूजा कहा है। चारों वेदों में इस प्रकार कहीं भी यज्ञ में हिंसा का प्रमाण नहीं है, परन्तु वेद विरोधियों ने वेदों के गलत अर्थकर करके यह सिद्व करने की कोशिश की है कि वेद में **''नरमेघ''**, **''अष्वमेघ''** यज्ञ करके नर–मनुष्य एवं अश्व–घोड़ा की बलि चढ़ाई जाती है, इत्यादि। नरमेघ यज्ञ का वास्तविक अर्थ, मृत्यु होने पर अन्त्येष्टि कर्म (दाह–संस्कार) एवं अश्वमेघ का अर्थ, यास्क मुनि ने **''राष्ट्रं वा अश्वमेध ाः''** अर्थात् राष्ट्र कल्याण के लिए यज्ञ का आयोजन करना कहा है। अतः हमें वैदिक स़ंस्कृति की रक्षा करने के लिए वेद विरोधी पाखण्डियों से भी सावधान होने की आवश्यकता है। प्रस्तुत मन्त्र में यह प्रार्थना है कि हे

ईश्वर! हम तेरी वेद मन्त्रों से स्तुति करते हैं। अतः आप हमारी आज के दिन, आने वाले कल, परसों, दिन–रात एवं सभी दिनों में सदा रक्षा करें। अतः हम अपनी रक्षा के लिए, अपने परिवार एवं देश की रक्षा के लिए, यज्ञ के आयोजन करें, यज्ञ कर्म को बढ़ाएँ और इस प्रकार हम संसार के सर्वश्रेष्ठ कर्म यज्ञ, जिसमें वेद मन्त्रों द्वारा ईश्वर की स्तुति होती है, ब्रह्मा द्वारा वेदों का प्रवचन तथा अग्नि में आहुतियाँ पड़ती हैं, का पृथ्वी पर विस्तार करें। यहाँ यह भाव भी उत्पन्न होता है कि ईश्वर तो संसार के कण–कण में है परन्तु जीव तो एक स्थान पर है तो दूसरे स्थान पर नहीं है। अतः यदि हमारी पहुँच बड़े से बड़े बलवान व्यक्ति अथवा राजा– महाराजा से भी है तो वह व्यक्ति ईश्वर की तरह हमारी सब जगह रक्षा कदापि नहीं कर सकता और यह भी ज्ञात नहीं कि कब वह व्यक्ति हमारे विरुद्ध हो जाए। अतः प्राणी की पूर्ण रक्षा तो यज्ञ में प्रतिष्ठित ईश्वर ही करता है। अतः हम यज्ञ में ब्रह्मा के उपदेश सुनकर उसके द्वारा अपनी रक्षा निश्चित करें। वेदों को कठिन कहना अथवा यज्ञ कर्म केवल कर्मकाण्ड ही है, ऐसा कहना महापाप है। वेद को ईश्वर ने विद्वान द्वारा प्रथम सुनने की आज्ञा दी है। वेद का विद्वान मिलना आज प्रायः तनिक सा कठिन अवश्य कह सकते हैं परन्तु विद्वान के पास जाकर वेद सुनना कठिन कैसे हो सकता है? क्योंकि जिज्ञासु ने केवल सुनना मात्र ही तो है। इसलिए वेदों को श्रुति भी कहते हैं। वेदों को सुन–सुनकर पुनः सब विद्वान हो जाते हैं और मिथ्यावाद को सुन–सुनकर सब मिथ्यावादी हो जाते हैं। अतः यज्ञ के आयोजन करके प्राणी सदा वेद सुने एवं अपनी, अपने परिवार तथा देश की रक्षा करे। प्रस्तुत मन्त्र में यह रक्षा ईश्वर ने " परे च विश्वा अहा" कहकर भविष्य में आने वाले समय तक की रक्षा निश्चित कर दी है। अर्थात् यज्ञ में आहुति डालने तथा स्तुति आदि करने से अगले जन्मों तक की सुरक्षा निश्चित हो जाती है।

अमावस्या का वैदिक महत्त्व

वेद कहता है कि जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में हर वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसे का वैसा ही साफ–साफ नज़र आता है तथा उसमें कोई भी भ्रांति नहीं रहती। उसी प्रकार वेदों के अध्ययन, मनन द्वारा जो बुद्धि में ज्ञान का प्रकाश होता है, उसमें भी कर्म, ज्ञान, उपासना, ईश्वर, जीवात्मा एवं प्रकृति के सही–सही स्वरूप का बोध होता है। हमारी इस पुरातन वा सनातन संस्कृति के अध्ययन के अभाव में आज ईश्वर वा ईश्वर भक्ति अथवा पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान प्रायः भ्रांतियुक्त सा हो गया है। उदाहरण के लिए हम यदि अमावस्या के दिन को ही लें जिसका वर्णन अथर्ववेद काण्ड 7, सूक्त 79 में शुभ, बलवर्धक पुत्रप्राप्ति, सुख–शांति आदि अनेक गुणों की खान कहा है; लेकिन समाज में वेदाध्ययन के अभाव में अमावस्या को भूत–प्रेतों वाली अमावस्या, डरावनी काली रात, अशुभ आदि अनेक बुरी वृत्तियों से भरपूर कह रखा है। इसके विपरीत, वेदों ने अमावस्या का सही स्वरुप कहा है कि अमावस्या के दिन सूर्य तथा चन्द्रमा साथ–साथ रहते हैं। सूर्य तेज तथा प्रकाश का प्रतीक है तथा सूर्य की किरणों में फसलें पकती हैं। दूसरी ओर चन्द्रमा शीतलता तथा सौम्यता का प्रतीक है जो औषधियों तथा वनस्पतियों में रस भरता है। अतः दोनों का सम्बन्ध है। उसी प्रकार हमारी वृत्ति सूर्य के समान तेजस्वी, ज्ञानवान तथा चन्द्रमा के समान हमारा मन शीतल तथा शान्त रहने के गुण वाला हो। इस मन्त्र में ईश्वर कहते हैं कि– हे अमावस्या! **''ते महित्वा''** अर्थात् तेरी महिमा है कि **''यत् संवसन्तः देवाः''** सब विद्वान नर–नारी प्रेमपूर्वक साथ–साथ मिलकर रहते हुए **''भागधेयम् अकृण्वन्''** अर्थात् हवि का भाग करते हैं अर्थात् यज्ञ करते हुए दीर्घायु, धन, सम्पदा, सुख–शान्ति प्राप्त करते हैं। अतः हमें वेदानुसार अमावस्या के दिन, विद्वान गुरूजनों के संग मिलकर यज्ञ करना चाहिए। आगे इस मन्त्र में कहा **''हे विश्ववारे''** अर्थात् वरण करने योग्य

अमावस्या, **''सुभगे''** तू सौभाग्य देने वाली है; **''तेन''** तेरे द्वारा जब हम यज्ञ करते हैं तो तू हमारे यज्ञ को पूर्ण करती हुई हमें सुख देती है। तथा **''सुवीरम्''** वीर सन्तानें देती है;**''रयिम्''** हर प्रकार का धन (बल, बुद्धि, ज्ञान) हमें देती है। अतः यदि हम अमावस्या के दिन यज्ञ करते हैं तो बलशाली सन्तान प्राप्त करते हैं और यह धनवान बनाती है। अगले अथर्ववेद मन्त्र (7/79/2) में ईश्वर ज्ञान देते हैं कि जैसे अमावस्या ही कहती है– ''अहम् एव अस्मि'' अर्थात् मैं ही अमावस्या हूँ। '' सुकृतः माम् आवसन्ति'' अर्थात् उत्तम कर्म करने वाले देव मेरे में निवास करते हैं अर्थात् अमावस्या के दिन सब मिलकर यज्ञ करते हैं। इन मन्त्रों में यह भाव समझाया गया है कि अमावस्या वाले दिन सब मिलकर यज्ञ करें, यह नर–नारियों को पुण्य तथा आशीर्वाद देने आती है। आज अमावस्या से सम्बंधित जो अन्धविश्वास फैलाया गया है उसका कारण वेद विद्या का अभाव ही कहा जाएगा जिस कारण आज समस्त नर–नारी अमावस्या के दिन के शुभ आशीर्वादों तथा उत्तम, वीर सन्तानों से वंचित हो रहे हैं। अतः हम वेदों से अमावस्या का सही स्वरूप सुनें, समझें तथा अमावस्या के दिन यज्ञ आयोजित करके देश को वीर सन्तानें प्रदान करते हुए एक दृढ़ राष्ट्र के रूप में विकसित करें।

पौर्णमासी का वैदिक महत्त्व

वेद सम्पूर्ण विद्याओं का भण्डार है जिसके अध्ययन किए बिना किसी पदार्थ दिन अथवा विद्या के सत्य स्वरूप एवं महत्त्व को जानना सर्वदा असंभव है। प्रभु ने पौर्णमासी के दिन का भी महत्त्व अथर्ववेद मन्त्र 7/80/1–2 में कहा कि यह दिन प्राणियों के लिए बहुत शुभ है। पौर्णमासी वाले दिन आकाश में चन्द्रमा अपने पूर्ण निखार पर होता है। शीतल चाँदनी पृथ्वी पर चहुँ ओर बिखर कर मन को एक विशेष आनन्द की अनुभूति कराती है। इस मन्त्र में इस दिन की विशेषता यह कही है कि इस दिन चन्द्रमा में सोलह कलाएँ प्रकट होती हैं। यजुर्वेद मन्त्र 8/36 में यह कलाएँ– (1) इक्षण=विचार, (2)प्राण, (3)श्रद्धा, (4)आकाश, (5)वायु, (6)अग्नि, (7)जल, (8)पृथ्वी, (9)इन्द्रिय, (10)मन, (11)अन्न, (12)वीर्य=पराक्रम, (13)तप=धर्मानुष्ठान, (14)मन्त्र=वेदविद्या, (15)कर्म लोक=चेष्टा स्थान, (16)लोकों में नाम इस नाम से वर्णित हैं। इतनी कलाओं के बीच में यह सब संसार परिपूर्ण है और संसार तथा इन कलाओं को रचने वाला ईश्वर स्वयं अनन्त कलाओं वाला है। अतः ऐसे ईश्वर को छोड़कर किसी अन्य की उपासना करने से कभी सुख प्राप्त नहीं होता। इस दिन चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण सोलह कलाओं से पूर्ण होने के कारण पौर्णमासी का दिन भी आगे, पीछे और बीच से, सभी ओर से शक्ति, ज्ञान और निर्मलता में परिपूर्ण होता है। अतः वेद कहता है कि इस दिन यज्ञ आदि द्वारा ईश्वर का पूजन करके प्राणी **"नाकस्य पृष्ठे"** अर्थात् दुःख रहित, सदा आनन्द देने वाले मोक्ष सुख को प्राप्त करे तथा **"संमदेम"** अर्थात् आनन्द का अनुभव करे। अथर्ववेद मन्त्र 7/80/2 में इस दिन ईश्वर की यज्ञ द्वारा पूजा करने से धन–सम्पदा, विद्यादि रत्न प्राप्त होते हैं। चन्द्रमा में प्रकट सोलह कलाओं को पूजा द्वारा प्रत्येक प्राणी अपने में धारण करके अक्षय सुख को प्राप्त करते हैं। सूर्य गति करता है, चन्द्रमा उसके

पीछे गति करता है और इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा दोनों आगे–पीछे, ईश्वर की शक्ति द्वारा प्रेरित होकर, द्युलोक में गतिशील हैं। मन्त्र में कहा कि यह दोनों एक छोटे बच्चे की भांति भ्रमण करते हुए अन्तरिक्ष में दिखाई देते हैं। उन दोनों में से सूर्य सब लोकों को प्रकाश देता है और चन्द्रमा बसन्त आदि ऋतुओं, मासों एवं अर्द्धमासों को बनाता हुआ, नया उत्पन्न होता सा दिखता है। वेद विद्या के विद्वान सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों में ईश्वर की अद्‌भुत महिमा का दर्शन करते हैं। अतः नर–नारी पौर्णमासी वाले पवित्र दिन को श्रद्धा से यज्ञ करके ईश्वर से प्रार्थना करें कि उनमें भी चन्द्रमा के समान सोलह कलाएँ उत्पन्न हो जाएँ। उदाहरण के तौर पर जिसमें श्रद्धा कला उत्पन्न होती है उसे सत्य पर धारणा (ऋत्+धा) हो जाती है। सत्य का यहाँ अर्थ सदा रहने वाली सत्ता–ईश्वर तथा ईश्वर से उत्पन्न वेद हैं। अर्थात् ईश्वर एवं वेदों पर पूर्ण आस्था आ जाती है। जो तप की कला में पारंगत हो जाता है वह पहले विद्वानों से तप का स्वरुप निश्चित कर अपने जीवन में तपोमय आचरण करता है जैसे श्रुतं तपः, दानम् तपः, स्वाहा तपः, दम तपः, शम् तपः, अर्थात् वेद सुनना, सुपात्र को दान देना, यज्ञ में आहुति डालना, इन्द्रिय–संयम, बुरे विचार मन में न आना इत्यादि सब वेदों में कहे तप हैं। अतः पौर्णमासी के शुभ अवसर पर हम यज्ञ करें और ईश्वर से प्रार्थना करें कि हे प्रभु! यह ज्ञान, बल, धन वा दिव्य गुणों वाली पौर्णमासी जो पूर्ण है, सोलह कलाओं वाली है; इस दिन हम यज्ञ करके यही दिव्य गुण प्राप्त करें तथा आनन्द में रहें। वेदों में ईश्वर ने एकादशी, पौर्णमासी तथा अमावस्या आदि के शुभ अवसरों पर यज्ञ करने का विधान किया है। हम ईश्वर के संविधान में रहकर, उसके अनुसार कार्य करके, जीवन को सुखमय बनाएँ।

यज्ञशेष अमृत

वेद में ईश्वर की आज्ञा है –**''इमाम् अमृतस्य श्नुष्टिम् आरभस्व''** (यज्ञशेष अमृतम्) अर्थात् हे मनुष्य! तू यज्ञशेष रूप अमृत भोजन को प्रारम्भ कर जिससे तू निरोगता, दीर्घायु को प्राप्त करेगा। प्रातःकाल हवन करने से बारह घण्टे तक घर की वायु, जल आदि सब पदार्थ किटाणुरहित, शुद्ध हो जाते हैं। विशेषकर भोजन पदार्थ आदि पर हवन में डाली हुई मन्त्र की आहुतियों का अलौकिक प्रभाव पड़ता है और उस भोजन अथवा जल को ग्रहण करने से मनुष्य निरोग तथा शान्त चित्त होता है। इस भोजन को ही यज्ञशेष अमृतम् कहा है। पुनः सायँकाल हवन करने से प्रातःकाल तक वातावरण शुद्ध हो जाता है। वेद मज़हब नहीं है, यह ईश्वरीय ज्ञान सदा पृथ्वी के आरंभ में मनुष्य के कल्याण हेतु ईश्वर द्वारा प्रकट होता है। अतः निरोगता, शुद्धता, आयुवर्द्धन एवं सुख–शांति के लिए सम्पूर्ण मानव जाति को नित्य हवन करना चाहिए। कई कहते हैं वेद एवं यज्ञ कठिन हैं अथवा यज्ञ में धुआँ इत्यादि होता है। तो यह कथन ईश्वर एवं वेद के विरुद्ध है। मातृभाषा सबसे आसान भाषा है। यज्ञ द्वारा हम पिछले तीन युगों की भांति भाईचारा बढ़ाएँ। वेद कहता है कि यज्ञशेष अमृत भोजन को प्राप्त करनेवाले प्राणी की हिंसा नहीं होती और रजो, तमो, सतोगुण समाप्त होने लगते हैं। उन्होंने कहा कि इससे निन्दित कर्म भी होने समाप्त हो जाते हैं। प्राणी प्रमाद, आलस्य और निद्रा आदि दोषों से ऊपर उठ जाता है तथा अशांति और विषय विकारों की तृष्णा आदि बुराइयाँ भी दूर हो जाती हैं। स्वयं कृष्ण महाराज गीता श्लोक 3/15 में कहते हैं कि हे अर्जुन! ईश्वर सदा यज्ञ में प्रतिष्ठित है तो हम यज्ञ करके ईश्वर को अपनी अच्छी प्रार्थनाएँ एवं भावनाएँ प्रकट करें। यजुर्वेद मन्त्र के अनुसार उन्होंने कहा – ''स्वः यज्ञेन कल्पन्ताम्'' अर्थात् यज्ञ से आत्मिक ज्ञान एवं आनन्द प्रत्यक्ष होने लगता है तथा हिंसा रुकती है। आज सम्पूर्ण पृथ्वी हिंसा की चपेट में है। भारतवर्ष ऋषि मुनि,

संत–फकीरों की यज्ञभूमि रही है। हमें अपनी पुरातन एवं वैदिक संस्कृति को जागृत करके हिंसा को रोकते हुए आज भाईचारा बढ़ाने की आवश्यकता पर बल देना होगा। जिसके लिये सनातन पद्धति द्वारा वेद मन्त्रों से यज्ञ करना एक परम आवश्यक शुभ एवं संसार का सर्वश्रेष्ठ कर्म है।
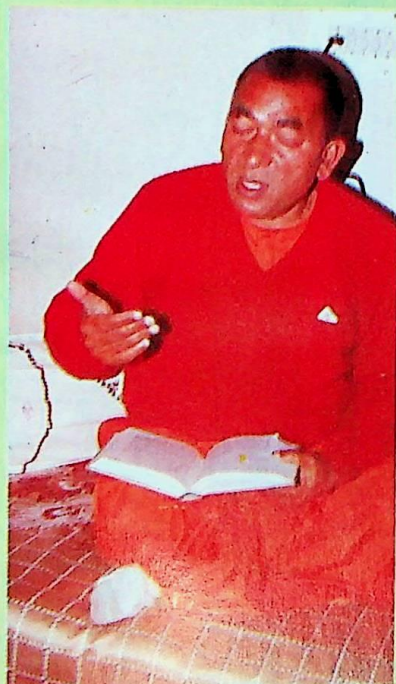
स्वामी जी प्रवचन करते हुए।

लेखक परिचय

स्वामी राम स्वरुप, योगाचार्य जी का जन्म 6 जून 1940 को हुआ। बचपन से ही आप सत्य की खोज में जगह–जगह भटकते रहे। आपने कई धर्मों और धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया। अंत में आपको अपने गुरु स्वामी ब्रह्मदास बनखंडी जी की शरण प्राप्त हुई, जो ऋषिकेश के बीहड़ जंगल में एक गुफा में निवास करते थे। आपने लद्दाख और ऋषिकेश के जंगलों में वर्षों कठोर योगाभ्यास किया। फलस्वरुप, 19 मार्च 1979 को आपको सत्य की अनुभूति हुई। आम कई महीने इस ब्रह्मावस्था के आनन्द में डूबे रहे। आपने इस ब्रह्मनुभूति में जाना कि सत्य का दर्शन वेदों में है–वेद ईश्वरीय वाणी है। तत्पश्चात् आपने संस्कृत भाषा एवं चारों वेदों का अध्ययन किया। सन् 1980 में आपने योल (हिमाचल) में वेद–आश्रम की स्थापना की और सन् 1986 में वेद एवं योग मन्दिर, नई दिल्ली की स्थापना की।

आप पिछले कई वर्षों से भारत के कोने–कोने में वेदों का प्रचार कर रहे हैं। आपका यह ज्ञान मात्र भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी फैला है। Hindu University of America (अमरीका में) ने आपको योग–विद्या का प्रोफैसर बनने का भी अनुरोध किया। आपने Indonesia और Singapore में भी वेद–विद्या का प्रसार किया। दिल्ली, जम्मू, हिमाचल, पंजाब और राजस्थान की कई पत्र–पत्रिकाओं में आप धर्म–संस्कृति पर लिख रहे हैं। आपने 'मानव धर्म शिक्षा', 'वैदिक–प्रवचन संग्रह', 'आत्मिक–उद्गार', 'श्रीमद्भगवद्गीता', 'पातञ्जल योग दर्शनम्' एवं 'Question-Answer on Vedanta and Eternal Vedas Philosophy' [illegible] रचना करके मानव समाज की सेवा की है।

Yajya Karm S.I.P.
ISBN 93-80698-0[illegible]
9789380698038
Rs. 65.00